CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत के सांस्कृतिक केंद्र

मथुरा

5239

कृष्णदत्त वाजपेयी

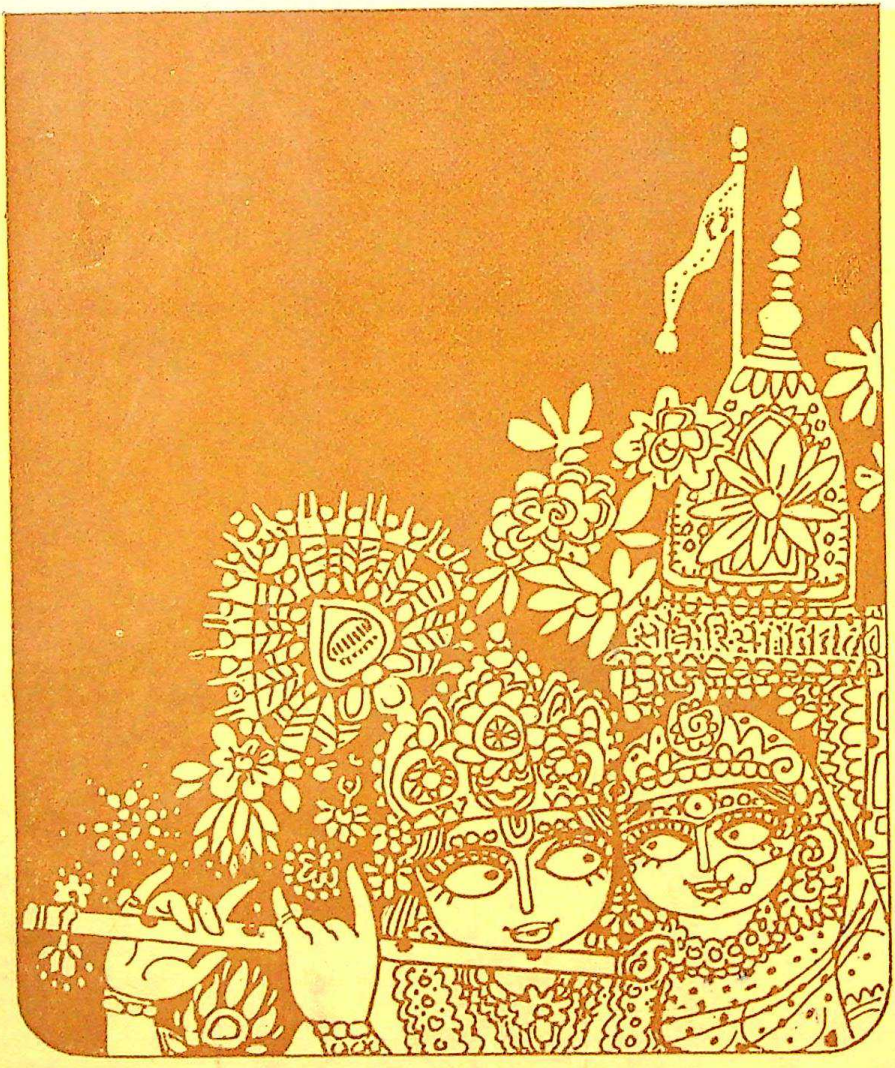

CC-0. Panmigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत के सांस्कृतिक केंद्र

मथुरा

कृष्णदत्त वाजपेयी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5239

5239

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5239

5239

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा

5239

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रंथमाला की अन्य पुस्तकें

उमा पांडेय
वाराणसी
कन्हैयालाल अग्रवाल
खजुराहो
अजयमित्र शास्त्री
अजंता

संपादक
कृष्णदत्त वाजपेयी

5239

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा

कृष्णदत्त वाजपेयी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली बंबई कलकत्ता मद्रास
समस्त विश्व में सहयोगी कंपनियां

© कृष्णदत्त वाजपेयी
प्रथम संस्करण : 1980

एस जी वसानी द्वारा दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड के लिए
प्रकाशित तथा पराग प्रिंटर्स द्वारा भारत मुद्रणालय, दिल्ली-32 में मुद्रित
K. D. Vajpai : MATHURA

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संपादकीय

भारत के दीर्घकालीन इतिहास में कतिपय स्थलों को उनकी भौगोलिक स्थिति तथा आर्थिक-सामाजिक कारणों से विशेष महत्व प्राप्त हुआ। उनमें से कई स्थल राजनीतिक केंद्रों के रूप में विकसित हुए, जहां जनपदों की राजधानियां स्थापित हुईं। उनमें नगर निर्माण योजनाओं को कार्यान्वित किया गया, जिससे उनका आकार-प्रकार विस्तीर्ण हुआ। व्यवसाय और व्यापार की वृद्धि के साथ ऐसे नगर समृद्ध हुए। उनका संबंध अन्य बड़े नगरों के साथ जुड़ा।

अन्य स्थल ऐसे थे जहां धार्मिक केंद्र स्थापित हुए। फलस्वरूप वहां स्तूपों, चैत्यों, मंदिरों और प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। राजवंशों, श्रेणियों तथा जन-साधारण के द्वारा दिए गए प्रोत्साहन एवं संरक्षण से ऐसे अनेक केंद्रों में साहित्य, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला आदि का विकास हुआ।

भारतीय राजनीतिक इतिहास के साथ लोकजीवन के विभिन्न पक्षों के अध्ययन के लिए आज भी भारत के अनेक प्राचीन नगरों में महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त है।

भारत के प्राचीन सांस्कृतिक केंद्रों पर इस पुस्तकमाला को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा अन्य ज्ञान पिपासु जनों को भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की सम्यक जानकारी हो सके और वे उन कारणों को समझ सकें जिन्होंने समय समय पर भारतीय इतिहास को प्रभावित किया। इन पुस्तकों को जटिल या अतिविस्तृत बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया। अध्याय के अंत में संदर्भ एवं संकेत इसलिए दिए गए हैं कि संबद्ध विषय में विशेष अन्वेषण करने वाले विद्यार्थियों को उनसे सहायता मिल सके। पुरातत्व, साहित्य एवं अनुश्रुति विषयक सामग्री का यथोचित उपयोग करने का प्रयत्न किया गया है। ऐतिहासिक विवरण क्रमबद्ध रूप में दिए गए हैं।

देश के महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केंद्रों में मथुरा की गणना है। आद्यऐतिहासिक काल से लेकर आधुनिक युग तक इस नगर ने संस्कृति के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया। न केवल भारत के धार्मिक इतिहास में अपितु भाषा, साहित्य तथा कला के इतिहास में मथुरा का प्रमुख स्थान रहा है।

प्रस्तुत ग्रंथ में मथुरा के कालक्रमिक इतिहास के साथ संस्कृति के उक्त क्षेत्रों में इसकी क्या विशेष भूमिका रही है, इसे दिखाने का प्रयास किया गया है। मथुरा की प्राचीन कला के कतिपय चुने हुए चित्र ग्रंथ के अंत में दिए गए हैं। इनके लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम मथुरा संग्रहालय के अधिकारियों, केंद्रीय पुरातत्व विभाग तथा प्रोफेसर हर्बर्ट हर्टल के प्रति आभारी हैं।

मैकमिलन प्रकाशन संस्थान के सुयोग्य संचालकों तथा समाज विज्ञान संपादक डा० श्याम विहारी राय के प्रति में अनुगृहीत हूं जिन्होंने इस उपयोगी ग्रंथमाला का प्रकाशन आरंभ किया है।

1 मई, 1980
पद्माकर नगर, सागर (म० प्र०)

कृष्णदत्त वाजपेयी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रम

1. भौगोलिक पृष्ठभूमि / 1
2. अनुसंधान तथा उत्खनन / 5
3. प्राचीन राजवंश / 9
4. श्रीकृष्ण का समय / 17
5. महात्मा बुद्ध और उनके पश्चात / 22
6. शक-कुषाण काल / 26
7. नाग-गुप्त युग / 30
8. पूर्व-मध्यकाल / 33
9. परवर्ती इतिहास / 36
10. जाट मराठा आधिपत्य / 38
11. मथुरा की वास्तुकला / 40
12. मूर्तिकला / 45
13. चित्रकला / 56
14. संगीत तथा नाट्य / 59
15. भाषा और साहित्य / 64
16. धर्म और दर्शन / 71
17. प्राचीन तथा अर्वाचीन यात्रियों के विवरण / 100
18. वर्तमान मथुरा / 109

संदर्भग्रंथ सूची / 118
चित्र सूची / 121
अनुक्रमणी / 123

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1
भौगोलिक

भारत के इतिहास में मथुरा का विशिष्ट स्थान है। प्राचीन काल से इस नगर को भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख केंद्र होने का गौरव प्राप्त रहा है। इसकी गणना भारत की प्रसिद्ध सात महापुरियों में की गई है। धर्म, दर्शन, कला, भाषा और साहित्य के विकास में मथुरा का बड़ा योग रहा है। यह नगर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 27° ′2830 अक्षांश तथा 77° ′41 पू० देशांतर पर स्थित है।

शूरसेन तथा मथुरा : मथुरा तथा उसके आस पास का प्रदेश, जिसे ब्रज कहा जाता है, प्राचीन काल में 'शूरसेन' जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी मथुरा या मथुरा नगरी थी। जनपद की 'शूरसेन' संज्ञा श्रीराम के छोटे भाई शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ी, जिन्होंने कुछ समय तक इस प्रदेश पर शासन किया था।

जनपद का शूरसेन नाम प्राचीन हिंदू, बौद्ध एवं जैन साहित्य में तथा यूनानी लेखकों के वर्णनों में मिलता है। 'मनुस्मृति' में शूरसेन ब्रह्मर्षि देश के अंतर्गत बताया गया है।[1] प्राचीन काल में ब्रह्मावर्त तथा ब्रह्मर्षिदेश को बहुत पवित्र समझा जाता था और वहां के निवासियों का आचार-विचार श्रेष्ठ एवं आदर्श रूप माना जाता था।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि शूरसेन जनपद की संज्ञा लगभग ईसवी सन के आरंभ तक जारी रही। जब से यहां विदेशी शक-कुषाणों का प्रभुत्व हुआ, संभवतः तभी से जनपद की संज्ञा उसकी राजधानी के नाम पर मथुरा हो गई। तत्कालीन तथा परवर्ती अभिलेखों में प्रायः मथुरा नाम ही मिलता है, शूरसेन नहीं। अधिकांश साहित्यिक ग्रंथों में भी शूरसेन के स्थान पर मथुरा नाम मिलने लगता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह हो सकता है कि शक-कुषाणकालीन नगर इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर गया कि लोग जनपद या प्रदेश के नाम को भी मथुरा नाम से पुकारने लगे और धीरे धीरे जनपद का शूरसेन नाम जनसाधारण के स्मृतिपटल से उतर गया।[3]

प्राचीन शूरसेन जनपद का विस्तार साधारणतया दक्षिण में चंबल नदी से लेकर उत्तर में वर्तमान मथुरा नगर के लगभग 75 कि० मी० उत्तर कुरु राज्य की सीमा तक था। उसकी सीमा पश्चिम में मत्स्य जनपद से और पूर्व में पंचाल राज्य से मिलती थी।[4] कुरु, पंचाल तथा मत्स्य जनपदों के साथ मथुरा के संबंध प्रायः मधुर रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सातवीं शती में जब चीनी यात्री हुएन-सांग यहां आया तब उसने लिखा कि मथुरा राज्य का विस्तार 5,000 ली (लगभग 1200 कि० मी०) था। इस वर्णन से पता चलता है कि सातवीं शती में मथुरा राज्य के अंतर्गत वर्तमान मथुरा-आगरा जिलों के अतिरिक्त आधुनिक भरतपुर तथा धौलपुर जिले और उत्तरी मध्यभारत का उत्तरी लगभग आधा भाग रहा होगा। दक्षिण-पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा जेजाकभुक्ति (जिझोती, प्राचीन चेदि जनपद) की पश्चिमी सीमा से तथा दक्षिण-पश्चिम में मालव राज्य की उत्तरी सीमा से मिलती होगी। सातवीं शती के बाद में मथुरा राज्य की सीमाएं घटती गईं। इसका प्रधान कारण समीप के कन्नौज राज्य का विस्तार था, जिसमें मथुरा तथा अन्य पड़ोसी राज्यों के बड़े भूभाग सम्मिलित हो गए।

मथुरा का प्राचीन रूप 'मधुरा' मिलता है। 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत' 'हरिवंश' तथा अन्य अनेक पुराणों में इस नगरी के नाम मधुरा, मधुपुरी आदि मिलते हैं। एक जैन उपांग ग्रंथ में 'महुरा' नाम आया है।[5] यादव प्रकाश के 'वैजयन्ती कोष' में मथुरा के दो नाम 'मधूषिका' और 'मधूपघ्ना' भी मिलते हैं। हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने ग्रंथ 'अभिधानचिंतामणि' (पृ 390) में मथुरा और 'मधूपघ्ना' नाम दिए हैं। प्राचीन अभिलेखों में 'मथुरा' और 'मथुला' नाम आए हैं।[6]

'वाल्मीकि रामायण' तथा पौराणिक साहित्य से ज्ञात होता है कि 'मथुरा' नामकरण मधु नामक दैत्य या असुर के कारण हुआ। सबसे प्राचीन नगर जो मधु या उसके पुत्र लवण द्वारा बसाया गया वह मधु के नाम पर मधुपुर या मधुपुरी कहलाया। इसके समीप का घना वन 'मधुवन' कहलाता था। 'रामायण' से यह भी ज्ञात होता है कि यह नगर यमुना के पश्चिम तट पर बसा हुआ था।[7] जब अयोध्या से श्रीराम के भाई शत्रुघ्न लवण को जीतने के लिए मधुपुरी चले तब उन्हें अपनी यात्रा में पहले गंगा पार करनी पड़ी और फिर यमुना। तब वे मधुपुरी के फाटक तक पहुंचे। इस मधुपुरी की पहचान आधुनिक महोली गांव से की गई है, जो वर्तमान मथुरा नगर से लगभग 6 कि० मी० दक्षिण-पश्चिम है। इसे अब मधुवन-महोली कहते हैं।

मथुरा का मुख्य पर्वत गोवर्धन है। 'भागवत' आदि पुराणों में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। पौराणिक कथाओं से ज्ञात होता है कि कृषिप्रधान व्रजवासियों के कल्याण और लाभ हेतु पर्वत का ठीक उपयोग श्रीकृष्ण द्वारा किया गया है। इसी कारण उसे धार्मिक महत्व मिला और गोवर्धन गिरि की पूजा होने लगी। इसका विस्तार सात कोस माना जाता है और बहुसंख्यक भक्तों द्वारा इसकी परिक्रमा की जाती है। अरावली पर्वत शृंखला व्रज के पश्चिम क्षेत्र में यत्र-तत्र फैली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस क्षेत्र की मुख्य नदी यमुना है। इसके प्राचीन नाम कालिंदी, सूर्यतनया, भानुजा आदि भी मिलते हैं। साहित्य, अभिलेखों तथा विदेशी यात्रियों के विवरणों में यमुना के प्रचुर उल्लेख प्राप्त हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की यह प्रधान नदी है। प्राचीन कुरु, मत्स्य, शूरसेन, तथा चेदि जनपदों के बड़े भागों को उपजाऊ बनाने में यमुना और उसकी सहायिकाओं का बड़ा योग रहा। पश्चिम की ओर से बढ़ते हुए रेगिस्तान से रक्षा हेतु इन नदियों तथा इनके तटवर्ती घने जंगलों की बड़ी उपादेयता रही है। इस समय फिर मथुरा के लिए मरुस्थल का खतरा बढ़ गया है।

प्राचीन शूरसेन जनपद की उपजाऊ भूमि तथा वनस्पति की प्रचुरता के उल्लेख प्राचीन साहित्य में बहुत मिलते हैं। पशुओं में गाय-बैल तथा पक्षियों में मयूर का यहां विशेष महत्व रहा है।

प्राचीन मथुरा का वर्णन : शत्रुघ्न के समय में और उसके बाद मथुरा या मथुरा नगरी के आकार और विस्तार का सम्यक पता नहीं चलता। प्राचीन पौराणिक वर्णनों से इस संबंध में किंचित जानकारी प्राप्त होती है।

'हरिवंश' से ज्ञात होता है कि पुरानी नगरी यमुना नदी के तट पर बसी हुई थी और उसका आकार अष्टमी के चंद्रमा जैसा था। उसके चारों ओर नगर दीवाल थी, जिसमें ऊंचे तोरणद्वार थे। दीवाल के बाहर खाई बनी हुई थी। नगरी धन-धान्य से पूर्ण और समृद्ध थी। उसमें अनेक उद्यान और वन थे। नगरी की स्थिति सब प्रकार से मनोज्ञ थी। मकान अट्टालिकाओं और सुंदर द्वारों से युक्त थे। उनमें विविध वस्त्राभूषणों से अलंकृत स्त्री-पुरुष निवास करते थे। ये लोग रागरहित और वीर थे। उनके पास बहुसंख्य हाथी, घोड़े और रथ थे। नगर के बाजारों में सभी प्रकार का क्रय-विक्रय होता था और रत्नों के ढेर विद्यमान थे। मथुरा की भूमि बड़ी उपजाऊ थी और समय पर वर्षा होती थी। मथुरा नगरी के रहने वाले सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे।[8]

यमुना नदी का प्रवाह प्राचीन काल से बदलता आया है। मधु और शत्रुघ्न के समय में यमुना की धारा उस स्थान के पास से बहती रही होगी जिसे अब महोली कहते हैं। वर्तमान मथुरा नगरी और महोली के बीच में बहुत से पुराने टीले दिखाई पड़ते हैं। इन टीलों से विविध प्राचीन अवशेष बड़ी संख्या में प्राप्त हुए, जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि उधर पुरानी बस्ती थी। इस भूभाग की अधिक व्यवस्थित खुदाई होने पर संभवतः इस बात का पता चल सकेगा कि विभिन्न कालों में मथुरा की बस्ती में किस प्रकार परिवर्तन हुए।

'वराह पुराण' से ज्ञात होता है कि किसी समय मथुरा नगरी गोवर्धन पर्वत और यमुना नदी के बीच बसी हुई थी और उनके बीच की दूरी अधिक नहीं थी।[9] वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अब गोवर्धन यमुना से काफी दूर है। प्रतीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि किसी समय गोवर्धन और यमुना के बीच इतनी दूरी न रही होगी जितनी आज है। 'हरिवंश पुराण' में भी कुछ इस प्रकार का संकेत प्राप्त होता है।[10]

संदर्भ

1. 'कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः।
   एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ।।—('मनुस्मृति', 2, 19)
2. वही, 2, 18 तथा 20.
3. वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में मध्यदेश के जनपदों की गणना करते समय 'माथुरक' तथा 'शूरसेन'—इन दोनों नामों का उल्लेख किया है : 'माथुरकोपज्योतिषधर्मारिण्यानि शूरसेनाश्च,—('बृहत्संहिता' 14, 3).
4. देखिए : 'मार्कंडेय पुराण' (पार्जीटर का सं०) पृ० 351-52 टि०.
   "महाभारत में कुरु, पंचाल, चेदि तथा मत्स्य जनपदों के साथ शूरसेन का नाम मिलता है : 'सन्ति रम्याः जनपदाः बह्वन्नाः परितः कुरुन्। पांचालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः ।। ('मार्कंडेय पुराण', विराट पर्व, 4, 1,9)."
5. 'महुरा य सूरसेणा'। ('इंडियन ऐंटिक्वेरी', जिल्द 20, पृ० 375).
6. 'ल्यूडर्स लिस्ट', सं० 1345, पृ० 165; सं० 937, पृ० 95.
7. 'रामायण', उत्तरकांड, 62, 17; 68, 3.
8. 'सा पुरी परमोदारा सालप्राकारतोरणा।
   स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना ।।57।।
   उद्यानवनसंपन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता।
   प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला ।।58।।
   चलाट्टालकेयूरा प्रासादवरकुण्डला।
   सुसंवृतद्वारवती चत्वरोद्गारहासिनी ।।59।।
   अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला।
   अर्द्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता ।।60।।
   पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता।
   क्षेत्राणि सस्यवंत्यस्याः काले देवश्च वर्षति ।।61।।
   नरनारी प्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते।'
   —'हरिवंश पुराण' (पर्व 1, अ० 54)
9. 'वराहपुराण', अध्याय 165, 21.
10. 'गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः।'—'हरिवंश' (1, 55, 36).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2

अनुसंधान तथा उत्खनन

मथुरा और उसके आस पास के क्षेत्र में पुरातत्वीय सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई है। उससे इस नगर की प्राचीनता, समृद्धि तथा कला-उत्कर्ष का पता चला है।

1836 में कर्नल स्टैची नामक सैनिक को यहां लाल पत्थर की बनी एक मूर्ति मिली जिस पर मधुपान का दृश्य अंकित है। तब से यहां कलाकृतियों की खोज और उनकी रक्षा का कार्य प्रारंभ हुआ।

अलेक्जैंडर कनिंघम के प्रति भारतीय जन चिरऋणी हैं। भारतीय पुरातत्व विभाग के प्रथम महा निदेशक के रूप में उन्होंने उत्तर भारत के अनेक प्राचीन स्थलों की खोज की, वहां की प्राचीन सामग्री की रक्षा की तथा उसके महत्व पर प्रकाश डाला। इन स्थलों में से एक मथुरा था। 1853 से लेकर 1872 तक कनिंघम और उनके साथियों ने मथुरा में अनेक कलावशेषों की खोज की। कनिंघम ने अपनी 'सर्वे रिपोर्टों' में उन्हें प्रकाशित कर मथुरा के महत्व को यूरोप में उद्घोषित किया।

1860 में मथुरा में जिला कचहरी के लिए इमारत बनवाते समय जमालपुर नामक पुराने टीले को काटा गया। वहां अनेक बौद्ध प्रतिमाएं और लेखों की प्राप्ति हुई। उनसे पता चला है कि उस स्थल पर एक बौद्ध स्तूप और कुछ विहार थे। बुद्ध की अत्यंत उत्कृष्ट अभिलिखित प्रतिमा भी वहां मिली, जो गुप्त सम्राट, कुमारगुप्त प्रथम के समय में यशदिन्न नामक कलाकार द्वारा बनाई गई थी। कुछ समय बाद भगवानलाल इंद्र को मथुरा के सप्तर्षि टीला से क्षत्रपकालीन एक सिंहध्वज मिला। उस पर खरोष्ठी में कई महत्वपूर्ण लेख थे, जिनसे मथुरा के क्षत्रपकालीन इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ा। यह विशिष्ट अभिलिखित कृति लंदन के ब्रिटिश संग्रहालय में भेज दी गई, जहां वह अब भी प्रदर्शित है। उसी टीले से सिलेटी पत्थर की बनी हुई कंबोजिका की प्रतिमा मिली, जो गांधार कलाशैली की सर्वोत्तम मूर्तियों में मानी जाती है। यह कंबोजिका महाक्षत्रप राजुवुल की पत्नी और प्रसिद्ध शक शासक षोडास की माता थी। इस कुल ने मथुरा में बौद्धधर्म के विकास में बड़ा योगदान दिया। राजुवुल (या राजुल) तथा षोडास ने अपने कुछ सिक्के मथुराशैली के चलाए, जिन पर लक्ष्मी की मूर्ति अंकित है।

सौभाग्य से मथुरा में एक विद्वान कलाप्रेमी अंगरेज एफ० एस० ग्राउस कलक्टर नियुक्त हुआ। वह भारतीय संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित था और इतिहास एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्य का मर्मज्ञ था। ग्राउस के मथुरा आगमन के पूर्व अनेक दुर्लभ कलाकृतियां मथुरा से बाहर चली गई थीं। उसने यहां 1874 में एक संग्रहालय की स्थापना कराई तथा मथुराकला के बहिर्गमन को रोका। संग्रहालय की इमारत मथुरा की वर्तमान कचहरी के पास बनवाई गई। यह संयोग की बात थी कि कुछ वर्षों के बाद पुरातत्व विभाग के प्रख्यात विद्वान डा० फोगल को मथुरा के पुरावशेषों की जिम्मेदारी सौंपी गई। डा० फोगल ने बड़े श्रम से संग्रहालय में मौजूद कलावशेषों का एक कैटलाग तैयार किया जिसके प्रकाशन ने देश-विदेश के विद्वानों और कला-प्रेमियों का ध्यान मथुरा की ओर आकृष्ट किया।

1908 में मथुरा के पंडित राधाकृष्ण मथुरा संग्रहालय के सहायक क्यूरेटर नियुक्त हुए। उन्होंने अथक अध्यवसाय से मथुरा और उसके आस पास के क्षेत्र में सर्वेक्षण करवाए तथा मूर्तियों, अभिलेखों, इमारती पत्थरों, सिक्कों आदि के रूप में प्रचुर सामग्री से संग्रहालय को समृद्ध बनाया। यमुना नदी तथा अनेक प्राचीन कूपों और सरोवरों की सफाई कराकर भी उन्होंने बहुसंख्यक अवशेषों का उद्धार किया। मथुरा के समीप माट नामक गांव से उन्होंने कुषाण शासकों की प्रतिमाओं को उपलब्ध किया।

प्रारंभ में पुरातत्वप्रेमी लार्ड कर्जन के नाम पर इस संग्रहालय का नामकरण हुआ। बाद में उसे 'पुरातत्व संग्रहालय' और अंततः 'राज्य संग्रहालय' नाम दिए गए। 1912 से यह संग्रहालय उत्तर प्रदेश शासन के अंतर्गत है। पुरानी इमारत नगर से दूर और अपर्याप्त थी, अतः नए भवन का निर्माण डैम्पियर पार्क के मनोरम स्थल पर किया गया। नवीन भवन में संग्रहालय 1933 में लाया गया। इस समय मथुरा क्षेत्र से प्राप्त बहुसंख्यक उत्कृष्ट कलाकृतियां संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इनमें पाषाण, मिट्टी और धातु की मूर्तियां, शिलालेख, सिक्के, चित्र आदि हैं। भारतीय कला के इतिहास के लिए मथुरा की यह सामग्री अत्यंत महत्व की है। मथुरा कला का दूसरा बड़ा भंडार कई सौ अवशेषों के रूप में राज्य संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है।

अनेक आक्रमणों के कारण मथुरा क्षत्र की बड़ी बरबादी हो चुकी थी। यहां की प्राचीन इमारतें ध्वस्त कर दी गई थीं और पूर्ण रूप में किसी मंदिर, स्तूप, विहार आदि के दर्शन दुर्लभ थे। केंद्रीय तथा राज्य पुरातत्व विभागों ने यहां कई बार सर्वेक्षण कराए। कुछ स्थलों पर साधारण उत्खनन भी हुए, जिनसे नई सामग्री प्रकाश में आई।

पश्चिमी जर्मनी के पुरातत्वज्ञ प्रोफेसर हर्बर्ट हर्टल ने मथुरा जिले में गोवर्धन नगर से लगभग 13 किलोमीटर दक्षिण सोंख नामक स्थान को उत्खनन हेतु चुना। भारत सरकार से आवश्यक अनुमति मिल जाने पर उन्होंने पुरातत्व संग्रहालय मथुरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सहयोग से वहां 1966 से 1974 तक खुदाई का कार्य कराया। अन्य स्थलों की अपेक्षा सोंख में बरबादी बहुत अल्प रूप में हुई थी, अतः वहां खुदाई कराना समीचीन था।

सोंख का उत्खनन बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। वहां ईसा की प्रथम सहस्राब्दी के लगभग प्रारंभ से लेकर कुषाणकाल के अंत तक के अवशेष मिले, जिनमें से कुछ का अत्यधिक महत्व है। कालक्रमानुसार सोंख से उद्घाटित संस्कृत का इस प्रकार वर्गीकरण किया गया है[1]:

स्तरक्रम	काल
16-17	कुषाण शासक वासुदेव तथा कनिष्क तृतीय
18-20	कुषाण शासक हुविष्क
21	कनिष्क प्रथम
22	विमकैडफाइसिस तथा कनिष्क
23-24	क्षत्रप तथा मथुराशासक रामदत्त।
25-28	मथुरा के मित्रवंशी शासक (ब्रह्ममित्र, विष्णुमित्र, सूर्यमित्र, गोमित्र) (ई० पू० 100 से 20 तक)
29-30	मध्य शुंगयुग
31-32	प्रारंभिक शुंगयुग
33-34	मौर्यकाल
35-36	प्रारंभिक मौर्य तथा प्राक्मौर्यकाल
37-40	चित्रित धूसर मृद्भांड तथा कृष्ण रक्तभांड काल (ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी प्रारंभ से लगभग 600 ई० पू० तक)

खुदाई में अनेक दुर्लभ वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनमें कुषाणकालीन वेदिकास्तंभ पर त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हुई शालभांजिका की मूर्ति अत्यंत मनोरम है। वह पूर्ण सुरक्षित है और मथुरा की कुषाणकालीन उत्कृष्ट कला की परिचायक है।

अन्य उपलब्ध वस्तुओं में एक सिरदल है, जिसमें नाग-नागी देवों को बीच में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है और दोनों ओर पंक्तिबद्ध पूजक प्रदर्शित हैं। इसी प्रकार नागयुक्त मकर, पंख फैलाए हुए गरुड़ आदि की आकृतियां भी दर्शनीय हैं। कांसे की अनेक कलात्मक कुषाण मूर्तियां भी खुदाई में मिली हैं। एक प्रतिमा कार्तिकेय की है, जिसमें उन्हें शक्ति धारण किए हुए दिखाया गया है। दूसरी मूर्ति में एक पुरुष प्याला लिए है और बाईं ओर माता-पुत्र प्रदर्शित हैं। मिट्टी की भी अनेक मूर्तियां मिली हैं। इनमें महिषमर्दिनी दुर्गा विशेष उल्लेखनीय है, जो कुषाण-कालीन है।

कुछ समय पूर्व श्रीकृष्ण जन्मस्थान के समीप गोविंदनगर नामक स्थान से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ दुर्लभ सामग्री मिली है। उससे ज्ञात हुआ है कि वहां कुषाण तथा गुप्तकाल में एक बड़ा बौद्धकेंद्र था। प्राप्त वस्तुओं में अभय मुद्रा में बुद्ध की एक सुंदर प्रतिमा मिली है। खड़े हुए बुद्ध की एक अभिलिखित मूर्ति भी उल्लेखनीय है। उस पर अंकित लेख के अनुसार इस मूर्ति का निर्माण गुप्त सं० 115 (434 ई०) में कुमार-गुप्त प्रथम के समय में उसी प्रवीण कारीगर यशदिन्न के द्वारा हुआ जिसने जमालपुर वाली प्रतिमा का निर्माण किया था। लेख से यह भी पता चला है कि यशदिन्न बौद्धभिक्षुक था। गोविंदनगर से अन्य अनेक मूर्तियां, शिलालेख तथा इमारती पत्थर भी मिले हैं।

हाल में केंद्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा मथुरा में कंकाली टीला के समीप श्री मुनीशचन्द्र जोशी के निर्देशन में उत्खनन कराया गया। इससे प्राचीन मथुरा के कालक्रम और विस्तार पर अच्छा प्रभाव पड़ा। खुदाई में कुषाणकालीन एक लघु जलाशय मिला। यह 9.10 मीटर लंबा, 8.10 मीटर चौड़ा तथा 3.36 मीटर गहरा है। इसका गोपथ पकी ईंटों का बना है। ताल में दोनों ओर कुंड हैं। खुदाई में मनके, मुहरें, और मूर्तियां मिली हैं जो अधिकांश कुषाणकालीन हैं।

संदर्भ

1. हर्बर्ट हर्टल : 'सम रिजल्ट्स आफ दि एक्सकैवेशंस ऐट सोंख', (नई दिल्ली, 1976) चित्र 10.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3
प्राचीन राजवंश

सूर्यवंश : श्रीकृष्ण के पहले शूरसेन जनपद के आद्य इतिहास संबंधी कुछ विवरण पुराणों तथा अन्य साहित्य में मिलते हैं। सबसे प्राचीन नाम सूर्यवंश का मिलता है, जिसके प्रथम राजा वैवस्वत मनु से इस राजवंश का उद्भव माना गया है। मनु के कई पुत्र हुए, जिन्होंने भारत के विभिन्न भागों पर राज्य किया : बड़े पुत्र इक्ष्वाकु थे, जिन्होंने मध्यदेश में अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया। अयोध्या का राजवंश मानव या सूर्यकुल का प्रधान वंश हुआ और उसमें अनेक प्रतापी शासक हुए।

मनु के दूसरे पुत्र का नाम नाभाग मिलता है। उनके लिए कहा गया है कि उन्होंने तथा अंबरीष आदि उनके वंशजों ने यमुनातट पर राज्य किया। यह निश्चित ज्ञात नहीं है कि नाभाग तथा उनके उत्तराधिकारियों ने कितने प्रदेश पर और किस समय तक राज्य किया।

चंद्रवंश : दूसरा प्रमुख वंश चंद्रवंश था। मनु की पुत्री का नाम इला था, जो चंद्रमा के लड़के बुध को ब्याही गई। उससे पुरुरवा का जन्म हुआ और इस पुरुरवा ऐल से चंद्रवंश चला। सूर्यवंश की तरह ही चंद्रवंश का भी विस्तार हुआ और धीरे धीरे उत्तर तथा मध्य भारत के विभिन्न प्रदेशों में उसकी शाखाएं स्थापित हुईं।

पुरुरवा ने प्रतिष्ठान में अपनी राजधानी स्थापित की।[1] पुरुरवा के उर्वशी नामक अप्सरा से कई पुत्र हुए। सबसे बड़े का नाम आयु था, जो प्रतिष्ठान की गद्दी का अधिकारी हुआ। दूसरे पुत्र अमावसु ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) में एक नए राज्य की स्थापना की। आयु के बाद अमावसु का पुत्र नहुष मुख्य शाखा का अधिकारी बना। उसका लड़का ययाति भारत का पहला चक्रवर्ती सम्राट हुआ, जिसने अपने राज्य का बड़ा विस्तार किया।[2] ययाति के दो पत्नियां थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। पहली से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए और दूसरी से द्रुह्यु, पुरु तथा अनु हुए। पुराणों से यह भी पता चलता है कि ययाति अपने बड़े लड़के यदु से रुष्ट हो गया और उसे शाप दिया कि यदु या उसके लड़कों को राजपद प्राप्त करने का सौभाग्य न प्राप्त होगा।[3] ययाति अपने सबसे छोटे लड़के पुरु को बहुत चाहता था। और उसी को उसने राज्य देने का विचार प्रकट किया। परंतु राजा के सभासदों ने ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए इस कार्य का विरोध किया।[4] यदु ने पुरु के पक्ष का समर्थन किया और स्वयं राज्य लेने से इनकार कर दिया। इस पर पुरु को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजा घोषित किया गया और वह प्रतिष्ठान की मुख्य शाखा का शासक हुआ। उसके वंशज पौरव कहलाए।

अन्य चारों भाइयों को जो प्रदेश दिए गए उनका विवरण इस प्रकार है : यदु को चर्मण्वती (चंबल), वेत्रवती (वेतवा) और शुक्तिमती (केन) का तटवर्ती प्रदेश मिला। तुर्वसु को प्रतिष्ठान के दक्षिण का भूभाग मिला और द्रुह्यु को उत्तर-पश्चिम का। गंगा-यमुना दोआब का उत्तरी भाग तथा उसके पूर्व का कुछ प्रदेश, जिसकी सीमा अयोध्या राज्य से मिलती थी, अनु के हिस्से में आया।

यादववंश : यदु अपने सब भाइयों में प्रतापी निकला। उसके वंशज यादव नाम से प्रसिद्ध हुए। 'महाभारत' के अनुसार यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज तथा अनु से म्लेच्छ जातियों का आविर्भाव हुआ।[5]

यादवों ने कालांतर में अपने केंद्र दशार्ण, अवंति, विदर्भ और माहिष्मती में स्थापित कर लिए। भीम सात्वत के समय में मथुरा और द्वारका यादव शक्ति के महत्वपूर्ण केंद्र बने। इनके अतिरिक्त शाल्व देश (वर्तमान आबू तथा उसके पड़ोस का प्रदेश) में भी यादवों की एक शाखा जम गई, जिसकी राजधानी पर्णाश नदी (आधुनिक बनास) के तट पर स्थित मार्तिकावत हुई। हाल में इस नदी के पार्श्व में किए गए उत्खननों से इस क्षेत्र के आद्य इतिहास पर रोचक प्रकाश पड़ा है।

अन्य राजवंशों के साथ यादवों की कशमकश बहुत समय तक चलती रही। पुरुरवा के पौत्र तथा आयु के पुत्र क्षत्रवृद्ध के द्वारा काशी में एक नए राज्य की स्थापना की गई थी। दक्षिण के हैहयवंशी यादवों तथा काशी एवं अयोध्या के राजवंशों में बहुत समय तक युद्ध चलते रहे। हैहय लोगों ने अपने आक्रमण सूर्यवंशी राजा सगर के समय तक जारी रखे। इन हैहयों में सबसे प्रतापी राजा कृतवीर्य का पुत्र कार्तवीर्य अर्जुन हुआ, जिसने नर्मदा से लेकर हिमालय की तलहटी तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया।

हैहयों की उत्तर की ओर बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए राजा प्रतर्दन के पुत्र वत्स ने प्रयाग के समीप वत्स राज्य की स्थापना की। इस राज्य की शक्ति कुछ समय बाद बढ़ गई, जिससे दक्षिण की ओर से होने वाले आक्रमणों का वेग कम पड़ गया। वत्स की राजधानी प्रसिद्ध कौशांबी नगरी हुई।

पुरुवंश की लगभग तेंतालीसवीं पीढ़ी में राजा दुष्यंत हुए, जिन्होंने कण्व ऋषि की पोषिता कन्या शकुंतला के साथ गांधर्व विवाह किया। शकुंतला से उत्पन्न भरत बड़े प्रतापी शासक हुए। उनके वंशज भरतवंशी कहलाए। इस वंश के एक राजा ने गंगा-यमुना दोआब के उत्तरी भाग पर अपना आधिपत्य जमाया। यह प्रदेश कालांतर में भरतवंशी राजा भ्रम्यश्व के पांच पुत्रों के नाम पर 'पंचाल' कहलाया। भ्रम्यश्व के एक पुत्र का नाम मुद्गल था, जिसके पुत्र वध्र्यश्व तथा पौत्र दिवोदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ पंचाल राज्य का बहुत विस्तार हो गया। दिवोदास के बाद क्रमशः मित्रायु, मैत्रेय, सोम, श्रृंजय और च्यवन इस वंश के शासक हुए। च्यवन तथा उसके पुत्र सुदास ने उत्तर-पश्चिम की ओर अपने राज्य की सीमा बहुत बढ़ा ली।[6] पूर्व में इसका राज्य अयोध्या की सीमा तक जा लगा। सुदास ने हस्तिनापुर के तत्कालीन पौरव शासक संवरण को मार भगाया। इस पर संवरण ने अनेक राजाओं से सहायता ली और सुदास के विरोध में एक बड़ा दल तैयार कर लिया। इस दल में पुरुवों के अतिरिक्त द्रुह्यु, मत्स्य, तुर्वसु, यदु, अलिन, पक्थ, भलनस, विषाणी और शिवि थे।[7] दूसरी ओर केवल राजा सुदास था। सुदास ने परुष्णी नदी (रावी) के तट पर इस सम्मिलित सैन्यदल को परास्त कर अतुल शौर्य का परिचय दिया। संवरण को बाध्य होकर सिंधु नदी के किनारे एक दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। यह युद्ध 'दाशराज्ञ युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है।

कुछ समय बाद संवरण ने अपने राज्य को पुनः प्राप्त किया। उसका पुत्र कुरु प्रतापी राजा हुआ। उसने दक्षिण पंचाल को भी जीता और अपने राज्य का विस्तार प्रयाग तक किया। कुरु के नाम से उत्तरी पंचाल के पश्चिम वाला प्रदेश 'कुरुक्षेत्र' कहलाया।

प्रश्न है कि उपर्युक्त दाशराज्ञ युद्ध के समय यादवों की मुख्य शाखा का राजा कौन था। पौराणिक वंशपरंपरा का अवलोकन करने पर पता चलता है कि पंचाल राजा का समकालीन सात्वत यादव का पुत्र अंधक रहा होगा। इस अंधक के विषय में उल्लेख मिलता है कि वह शूरसेन जनपद के तत्कालीन गणराज्य का अध्यक्ष था। संभवतः अंधक अपने पिता भीम के समान वीर न था। दासराज्ञ युद्ध से पता चलता है कि अन्य नौ राजाओं के साथ वह भी सुदास से पराजित हुआ।

यदु से भीम सात्वत तक का वंश : अब यदु से लेकर भीम सात्वत तक की यादव वंशावली विचारणीय है। विभिन्न पुराणों में यदुवंश की इस मुख्य शाखा के नामों में अनेक जगह विपर्यय मिलते हैं। पार्जीटर ने पुराणों के आधार पर जो वंश तालिका दी है[8] उसे देखने पर पता चलता है कि यदु के बाद उसका पुत्र क्रोष्टु या कोष्ट्रि मुख्य यादवशाखा का अधिकारी हुआ।[9] उसके जिन वंशजों के नाम मिलते हैं वे ये हैं : स्वाहि, रुशद्गु, चित्ररथ और शशबिंदु। शशबिंदु प्रतापी शासक हुआ। उसने द्रुह्यु लोगों को हराकर उन्हें उत्तर-पश्चिम की ओर पंजाब में भगा दिया, जहां उन्होंने कालांतर में गंधार राज्य की स्थापना की। शशबिंदु ने पुरुओं को भी पराजित कर उन्हें उत्तर-पश्चिम की ओर जाने के लिए विवश किया। इन विजयों में शशबिंदु को अपने समकालीन अयोध्यानरेश मांधाता से बड़ी सहायता मिली। मांधाता इक्ष्वाकु वंश में प्रसिद्ध राजा हुआ। उससे अच्छे संबंध बनाए रखने के लिए शशबिंदु ने अपनी पुत्री बिंदुमती का विवाह उसके साथ कर दिया। मांधाता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने कान्यकुब्ज प्रदेश को जीता और आनवों को भी पराजय दी।

शशबिंदु से लेकर भीम सात्वत तक यादवों की मुख्य शाखा के जिन राजाओं के नाम मिलते हैं वे ये हैं : पृथुश्रवा, अंतर, सुयज्वा, उशना, शिनेयु, मरुत्त, कम्बलबर्हि, रुक्म-कवच, परावृत, ज्यामघ, विदर्भ, कृथभीम, कुन्ति, धृष्ठ, निर्वति, विदूरथ, दशार्ह, व्योम, जीमूत, विकृति, भीमरथ, रथवर, दशरथ, एकदशरथ, शकुनि, करम्भ, देवरात, देवक्षेत्र, देवन, मधु, पुरुवश, पुरुद्वंत, जंतु (या अम्शु) सत्वंत और भीम सात्वत।

उक्त सूची में यदु और मधु के बीच में होने वाले राजाओं में से किस किस ने यमुनातटवर्ती प्रदेश पर (जो बाद में शूरसेन कहलाया) राज्य किया, यह बताना कठिन है। पुराणादि में इस संबंध में निश्चित कथन नहीं मिलते। पुराणों में कतिपय राजाओं के विषय में यत्र-तत्र कुछ वर्णन अवश्य मिलते हैं पर वे प्रायः अधूरे हैं। जैसे उशना के संबंध में आया है कि उसने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किए। कृथभीम को विदर्भ का शासक लिखा है। उसके भाई कौशिक से यादवों के चेदिवंश का आरंभ हुआ। कृथभीम के बाद विदर्भ का प्रसिद्ध यादव शासक भीमरथ हुआ, जिसकी पुत्री दमयंती निषधराज नल को ब्याही गई।

मधु और लवण : यादवों में मधु एक प्रतापी शासक माना जाता है। वह चंद्रवंश की 61वीं पीढ़ी (ज्ञात नामों के अनुसार 44वीं पीढ़ी) में हुआ। वह इक्ष्वाकुवंशी राजा दिलीप द्वितीय अथवा उसके उत्तराधिकारी दीर्घबाहु का समकालीन था। कुछ पुराणों के अनुसार मधु गुजरात से लेकर यमुनातट तक के बड़े भूभाग का स्वामी था। संभवतः इस मधु ने अनेक स्थानों में बिखरे हुए यादव राज्यों को सुसंगठित किया। पुराणों तथा 'वाल्मीकि रामायण' आदि में मधु के संबंध में जो विभिन्न वर्णन मिलते हैं, उनसे बड़ी भ्रांति पैदा हो गई है। प्रायः मधु के साथ 'असुर,' 'दैत्य,' 'दानव' आदि विशेषण मिलते हैं।[10] साथ ही अनेक पौराणिक वर्णनों में यह भी आया है कि मधु बड़ा धार्मिक एवं न्यायप्रिय शासक था। उसके पुत्र का नाम लवण दिया है। लवण को अत्याचारी कहा गया है। इसी लवण को मारकर अयोध्यानरेश श्रीराम के भाई शत्रुघ्न ने उसके प्रदेश पर अपना अधिकार जमाया।

पुराणों तथा 'वाल्मीकि रामायण' में मधु और लवण की कथा विस्तार से दी हुई है। उसके अनुसार मधु के नाम पर मधुपुर या मधुपुरी नगर यमुनातट पर बसाया गया।[11] मधु को लोला नामक असुर का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है। उसे बड़ा धर्मात्मा, बुद्धिमान और परोपकारी कहा गया है। मधु ने शिव की तपस्या कर उनसे एक अमोघ त्रिशूल प्राप्त किया। मधु की स्त्री का नाम कुंभीनसी था, जिससे लवण का जन्म हुआ। लवण बड़ा होने पर लोगों को अनेक प्रकार से कष्ट पहुंचाने लगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे दुखी होकर कुछ ऋषियों ने अयोध्या जाकर श्रीराम को सब बातें बताईं और उनसे प्रार्थना की कि लवण के अत्याचारों से लोगों को शीघ्र छुटकारा दिलाया जाए। अंत में श्रीराम ने शत्रुघ्न को मधुपुर जाने की आज्ञा दी। शत्रुघ्न संभवतः प्रयाग के मार्ग से नदी के किनारे किनारे चलकर मधुवन पहुंचे और वहां उन्होंने लवण का संहार किया।[12]

चंद्रवंश की 61वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ उक्त मधु तथा लवणपिता मधु एक ही थे अथवा नहीं, यह विवादास्पद है। पुराणों आदि की तालिका में पूर्वोक्त मधु के पिता का नाम देवन तथा पुत्र का नाम पुरुवश दिया है और इस मधु को अयोध्यानरेश रघु के पूर्ववर्ती दीर्घबाहु का समकालीन दिखाया गया है, न कि राम या दशरथ का। इससे तथा पुराणों के हर्यश्व-मधुमती उपाख्यान से भासित होता है कि संभवत. यदुवंशी मधु तथा लवणपिता मधु एक व्यक्ति नहीं थे।[13] इसमें संदेह नहीं कि लवण एक शक्तिशाली शासक था। 'हरिवंश' से पता चलता है कि लवण ने राम के पास युद्ध का संदेश लेकर अपना दूत भेजा और उसके द्वारा कहलाया : 'हे राम तुम्हारे राज्य के निकट ही मैं तुम्हारा शत्रु हूं। मुझ जैसा राजा तुम्हारे सदृश बलदृप्त 'सामंत' को नहीं देख सकता।'[14] लवण ने यह भी कहलाया कि रावणादि का वध करके राम ने अच्छा काम नहीं किया, बल्कि एक बड़ा कुत्सित कर्म किया है, आदि।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि लवण ने अपने राज्य का काफी विस्तार कर लिया था। इस कार्य में उसे अपने बहनोई हर्यश्व से भी सहायता मिली होगी। शायद लवण ने अपने राज्य की पूर्वी सीमा बढ़ाकर गंगा नदी तक कर ली थी और इसीलिए राम को कहलाया था कि 'तुम्हारे राज्य के निकट ही मैं तुम्हारा शत्रु हूं।' लवण की दर्पोक्ति तथा राम के प्रति उसकी खुली चुनौती से प्रकट होता है कि उस समय लवण की शक्ति प्रबल हो गई थी। अन्यथा राम से, जिन्होंने कुछ ही समय पूर्व रावण जैसे दुर्दांत शत्रु का संहार कर अपने शौर्य की धाक जमा दी थी, युद्ध मोल लेना हंसी-खेल न था। लवण के द्वारा रावण की सराहना तथा राम की निंदा इस बात की सूचक है कि रावण की अनार्यनीति और कार्य उसे पसंद थे। अनुमान होता है कि लवण और उसका पिता मधु किसी अनार्य शाखा के थे। वे आर्यों की विस्तारवादी नीति के विरोधी थे। उनके देवों के प्रति असुरों या अनार्यों की गहरी अनास्था थी। मधु की नगरी मधुपुरी के जो वर्णन प्राचीन साहित्य में मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि उस नगरी का स्थापत्य उच्चकोटि का था। शत्रुघ्न भी उस रम्य पुरी को देखकर चकित हो गए और अनुमान करने लगे कि वह देवों द्वारा निर्मित हुई होगी। प्राचीन वैदिक साहित्य में असुरों के दृढ़ किलों एवं मकानों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। संभव है कि लवणपिता मधु या उसके किसी पूर्वज ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यमुना के तटवर्ती प्रदेश पर अधिकार कर लिया हो। जैसा ऊपर कहा गया है, यह अधिकार लवण के समय समाप्त हो गया।

सूर्यवंश का आधिपत्य : शत्रुघ्न और लवण का युद्ध महत्व का है। इस युद्ध में शत्रुघ्न सैन्य सहित मधुवन पहुंचे होंगे। उनकी यह विजययात्रा संभवतः प्रयाग होकर यमुना नदी के किनारे के मार्ग से हुई होगी। लवण ने उनका मुकाबला किया, परंतु वह परास्त हुआ और मारा गया। शायद हर्यश्व भी इस युद्ध में समाप्त कर दिया गया। लवण के पिता मधु की मृत्यु इस युद्ध के पहले ही हो चुकी थी। इस विजय से अयोध्या के इक्ष्वाकुओं की धाक सुदूर यमुनातटवर्ती प्रदेश तक जम गई। रावण के वध से उनका यश दक्षिण में पहले से ही फैल चुका था। अब पश्चिम की विजय से वे बड़े शक्तिशाली गिने जाने लगे और उनकी शक्ति को चुनौती देने वाला कोई न रहा।

शत्रुघ्न ने कुछ समय तक नए प्रदेश में निवास कर उसकी व्यवस्था की। यहां से जाते समय उन्होंने अपने पुत्र सुबाहु को इस नए 'शूरसेन' जनपद का स्वामी नियुक्त किया।[15]

लवण का वध करने के पश्चात शत्रुघ्न ने जंगल (मधुवन) को साफ करवाया और मधुरा नामक पुरी को बसाया।[16] इस प्रकार उस घने जंगल के कट जाने तथा पुरी का संस्कार हो जाने से नगर एवं जनपद की शोभा बहुत बढ़ गई।[17]

प्रतीत होता है कि मधुवन और मधुपुरी में निवास करने वाले लवण के अधिकांश अनुयायिओं को शत्रुघ्न ने समाप्त कर दिया। शेष भयभीत होकर अन्यत्र चले गए होंगे। तभी शत्रुघ्न ने उस पुरी को ठीक प्रकार से बसाने की बात सोची होगी। संभवतः उन्होंने पुरानी नगरी (मधुपुरी) को नष्ट नहीं किया। उन्होंने उससे दूर नई बस्ती बसाने की भी कोई आवश्यकता न समझी होगी। प्राचीन पौराणिक उल्लेखों तथा रामायण के वर्णन से यह प्रकट है कि उन्होंने जंगल को साफ करवाया तथा प्राचीन मधुपुरी को एक नए ढंग से आबाद कर उसे सुशोभित किया। 'रामायण' में देवों से वर मांगते हुए शत्रुघ्न कहते हैं: 'हे देवगुण, मुझे वरदान दीजिए कि यह सुंदर मधुपुरी या मधुरा नगरी, जो ऐसी लगती है मानो देवताओं द्वारा बनाई गई हो, शीघ्र ही बस जाए।'[18] देवताओं ने 'एवमस्तु' कहा और कुछ समय बाद पुरी आबाद हो गई। बारह वर्ष के अनंतर इस मथुरा नगरी तथा उसके आस-पास के प्रदेश की कायापलट गई।

यादव वंश का पुनः अधिकार : पौराणिक अनुश्रुति से ज्ञात होता है कि शत्रुघ्न की मृत्यु के बाद यादववंशी सत्वान या सत्वंत के पुत्र भीम सात्वत ने मधुरा नगरी तथा उसके आस-पास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। संभवतः हर्यश्व और मधुमती की संतति का संबंध भीम सात्वत और उसके वंशजों के साथ रहा। इसीलिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'हरिवंश' में कहा गया है कि हर्यश्व का वंश यदुवंश के साथ घुल-मिल जाएगा।

भीम सात्वत के पुत्र अंधक और वृष्णि थे। इन दोनों के वंश बहुत प्रसिद्ध हुए। अंधक का वंश मथुरा प्रदेश का अधिकारी हुआ और वृष्णि के वंशज द्वारका के शासक हुए। महाभारतयुद्ध के पूर्व मथुरा के शासक उग्रसेन थे, जिनका उत्तराधिकारी उनका पुत्र कंस हुआ। द्वारका के वृष्णि वंश में उस समय शूर के पुत्र वसुदेव थे। उग्रसेन के भाई देवक के सात पुत्रियां थीं, जिनमें देवकी सबसे बड़ी थी। इन सातों का विवाह वसुदेव के साथ हुआ। देवकी से कृष्ण पैदा हुए। वसुदेव की बहन कुंती राजा पांडु को ब्याही गई, जिससे युधिष्ठिर आदि पांच पांडवों का जन्म हुआ।

अंधक और वृष्णि द्वारा परिचालित राज्य गणराज्य थे। उनका शासन किसी एक राजा द्वारा न होकर जनता के चुने हुए व्यक्तियों द्वारा होता था। ये व्यक्ति अपने में से एक प्रधान चुन लेते थे, जो 'गण मुख्य' कहलाता था। कहीं कहीं उसे 'राजा' भी कहते थे, पर नृपतंत्र वाले राजा से वह भिन्न होता था। महाभारत के समय अंधक और वृष्णि राज्यों ने मिलकर अपना एक संघ बना लिया था। इस संघ के दो मुखिया चुने गए : अंधकों के प्रतिनिधि उग्रसेन और वृष्णियों के कृष्ण। जैसा महाभारत से प्रकट है, संघ की व्यवस्था बहुत समय तक सफलता के साथ चलती रही और उसके शासन से प्रजा संतुष्ट रही।

संदर्भ

1. प्रतिष्ठान के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं. कुछ लोग इसे प्रयाग के सामने वर्तमान झूंसी और उसके पास का पीहन गांव मानते हैं. अन्य लोगों के मत से गोदावरी के किनारे वर्तमान पैठन नामक स्थान प्रतिष्ठानपुर था. तीसरे मत के अनुसार प्रतिष्ठान उत्तर के पर्वतीय प्रदेश में यमुनातट पर था. चिंतामणि विनायक वैद्य का अनुमान है कि पुरुरवा उत्तराखंड का पहाड़ी राजा था और वहीं उसका उर्वशी अप्सरा से संयोग हुआ. उसके पुत्र ययाति ने पर्वत से नीचे उतरकर सरस्वती के किनारे (वर्तमान अंबाला के आसपास) अपना केंद्र बनाया (चिंतामणि विनायक वैद्य : 'दि सोलर सैंड लूनर क्षत्रिय रेसेज आफ इंडिया', पृ० 47-48).
2. पुराणों के अनुसार ययाति ने सप्तद्वीप पृथिवी को जीता. देखिए : 'हरिवंश' 1, 30, 7 तथा 16.
3. वही, 1, 30, 29.
4. 'महाभारत' (नवीन पूना संस्करण, 1933), 1, 80, 13-15.
5. यदास्तु यादवा जातास्तुवसोर्यवनाः सुताः।
द्रुह्योरपि सुता भोजा अनास्तु म्लेच्छजातयः।' (वही, 1, 80, 26).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

6. देखिए 'अग्नि पुराण', 277, 20; 'गरुड़ पुराण', 1, 140, 9 आदि.
7. 'ऋग्वेद' (7, 18; 19; 9, 61-2) में इस दासराज्ञ युद्ध का उल्लेख मिलता है.
8. पार्जीटर : 'ऐंश्यंट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन', पृ० 105-7.
9. यदु के दूसरे पुत्र सहस्रजित से हैहयवंश का आरंभ हुआ, जिसकी कालांतर में कई शाखाएं हुईं.
10. 'हरिवंश' 1, 54, 22; 'विष्णु पुराण', 1, 12, 3 आदि. इसका एक कारण यह कहा जा सकता है कि पुराणकारों आदि ने भ्रमवश मधुकैटभ दैत्य और उक्त मधु को एक समझ लिया.
11. यही नगर बाद में 'मधुरा' या 'मथुरा' हुआ.
12. 'रामायण', उत्तरकांड, सर्ग 61-69.
13. इस उपाख्यान के अनुसार अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी हर्यश्व ने मधु दैत्य की पुत्री मधुमती से विवाह किया. अपने भाई के द्वारा बहिष्कृत किए जाने पर हर्यश्व सपत्नीक अपने श्वसुर मधु के पास मधुपुर चले आए. मधु ने हर्यश्व का स्वागत कर उनसे उस प्रदेश पर शासन करने को कहा और यह भी कहा कि लवण उनकी सब प्रकार से सहायता करेगा. मधु ने हर्यश्व से फिर कहा—तुम्हारा वंश कालांतर में ययाति वाले यदुवंश के साथ घुल-मिल जाएगा और तुम्हारी संतति चन्द्रवंश की एक शाखा हो जाएगी :

'यायातमपि वंशस्ते समेष्यति च यादवम् ।
अनुवंशं च वंशस्ते सोमस्य भविता किल ।।'—('हरिवंश पुराण', 2, 37, 34)

इसके बाद हर्यश्व के द्वारा राज्यविस्तार करने तथा उसके द्वारा गिरि पर एक नगर (संभवतः गोवर्धन) बसाने का उल्लेख है और उसके शासन की प्रशंसा है.
14. विषयासन्नभूतोऽस्मि तव राम रिपुश्च ह ।
न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम् ।।—('हरिवंश पुराण', 1, 54, 28).
15. कहीं कहीं शत्रुघ्न द्वारा जनपद पर सुबाहु के स्थान पर दूसरे पुत्र शूरसेन के नियुक्त करने का उल्लेख मिलता है । उदाहरणार्थ देखिए :

'शत्रुघातिनि शत्रुघ्न· सुबाहौ च बहुश्रुते ।
मथुराविदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः ।। — (कालिदास : 'रघुवंश', 15, 36).

हो सकता है कि पहले सुबाहु कुछ दिन शूरसेन जनपद का शासक रहा हो और उसके यहां से चले जाने पर शूरसेन वहां का स्वामी बना हो. इसी शूरसेन के नाम पर जनपद का नामकरण होने की चर्चा ऊपर की जा चकी है.
16. 'हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ।'—('विष्णु पुराण', 1, 12, 4).
17. 'छित्वा वनं तत्सौमित्रिः निवेशंसोऽभ्यरोचयत् ।
भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मविष्त् ।।'—('हरिवंश पुराण', 1, 54, 55).
18. 'इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेऽस्तु वरः परः ।।'—('रामायण', उत्तरकांड, 70, 5)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4

श्रीकृष्ण का समय

ब्रज या शूरसेन जनपद के इतिहास में श्रीकृष्ण का समय बड़े महत्व का है। उसी समय प्रजातंत्र और नृपतंत्र के बीच कठोर संघर्ष हुए, मगध राज्य की शक्ति का विस्तार हुआ और भारत का वह महाभीषण संग्राम हुआ, जिसे महाभारत युद्ध कहते हैं। इन राजनीतिक हलचलों के अतिरिक्त इस काल का सांस्कृतिक महत्व भी है : श्रीकृष्ण साधारण व्यक्ति न होकर युगपुरुष थे। उनके व्यक्तित्व में भारत को एक प्रतिभासंपन्न राजनेता ही नहीं, एक महान कर्मयोगी और दार्शनिक प्राप्त हुआ, जिसका गीताज्ञान समस्त मानवजाति एवं सभी देश-काल के लिए पथप्रदर्शक माना गया है।

मथुरा नगरी इस महान विभूति का जन्मस्थान होने के कारण धन्य हो गई ! मथुरा ही नहीं, सारा शूरसेन या ब्रज जनपद आनंदकंद कृष्ण की मनोहर लीलाओं की क्रीड़ाभूमि होने के कारण गौरवान्वित हो गया। श्रीकृष्ण भागवतधर्म के महान स्रोत हुए। इस धर्म ने कोटि कोटि भारतीय जन का अनुरंजन किया। उसके द्वारा कितने ही विदेशी भी प्रभावित हुए। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का एक बड़ा भाग कृष्ण की मनोहर लीलाओं से ओतप्रोत है। उनके लोकरंजक रूप ने भारतीय जनता के मानस पर जो छाप लगा दी है वह अमिट है।

वर्तमान ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर श्रीकृष्ण का जन्म लगभग ई० पू० 1500 माना जा सकता है। वह संभवत: 100 वर्ष से कुछ ऊपर की आयु तक जीवित रहे। अपने इस दीर्घ जीवन में उन्हें विविध प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहना पड़ा। उनका प्रारंभिक जीवन ब्रज में कटा और शेष द्वारका में व्यतीत हुआ। बीच बीच में उन्हें अन्य अनेक जनपदों में भी जाना पड़ा। जो अनेक घटनाएं उनके समय में घटीं उनकी विस्तृत चर्चा पुराणों तथा महाभारत में मिलती है। वैदिक साहित्य में कृष्ण का उल्लेख बहुत कम मिलता है और उसमें उन्हें मानवरूप में ही दिखाया गया है, न कि नारायण या विष्णु के अवतार रूप में।[1] परंतु परवर्ती साहित्य में प्राय: उन्हें देव या विष्णु रूप में प्रदर्शित करने का भाव मिलता है।[2]

कंस का शासन : श्रीकृष्ण के जन्म के पहले शूरसेन जनपद का शासक कंस था, जो अंधकवंशी उग्रसेन का पुत्र था। बचपन से ही कंस स्वेच्छाचारी था। बड़ा होने पर वह जनता को अधिक कष्ट पहुंचाने लगा। उसे गणतंत्र की परंपरा रुचिकर न थी और शूरसेन जनपद में वह स्वेच्छाचारी नृपतंत्र स्थापित करना चाहता था। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी शक्ति बढ़ाकर उग्रसेन को पदच्युत कर दिया और स्वयं मथुरा के यादवों का अधिपति बन गया। इससे जनता के एक बड़े भाग का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। परंतु कंस की अनीति यहीं तक सीमित नहीं रही, वह शीघ्र ही मथुरा का निरंकुश शासक बन गया और प्रजा को अनेक प्रकार से पीड़ित करने लगा। इससे प्रजा में कंस के प्रति गहरा असंतोष फैल गया। लेकिन कंस की शक्ति इतनी प्रबल थी और उसका आतंक इतना छाया हुआ था कि बहुत समय तक जनता उसके अत्याचारों को सहती रही और उसके विरुद्ध कुछ करने में असमर्थ रही।

कंस की इस शक्ति का प्रधान कारण यह था कि उसे आर्यावर्त के तत्कालीन सर्वप्रतापी राजा जरासंध का सहारा प्राप्त था। यह जरासंध पौरव वंश का था और मगध के विशाल साम्राज्य का शासक था। उसने अनेक प्रदेशों के राजाओं से मैत्री संबंध स्थापित कर लिए थे, जिनके द्वारा उसे अपनी शक्ति बढ़ाने में बड़ी सहायता मिली। कंस को जरासंध ने अस्ति और प्राप्ति नामक अपनी दो लड़कियां ब्याह दीं और इस प्रकार उसने अपना घनिष्ठ संबंध जोड़ लिया। चेदि के यादव-वंशी राजा शिशुपाल को भी जरासंध ने अपना गहरा मित्र बना लिया। इधर उत्तर-पश्चिम में उसने कुरुराज दुर्योधन को अपना सहायक बनाया। पूर्वोत्तर की ओर असम के राजा भगदत्त से भी उसने मित्रता जोड़ी। इस प्रकार उत्तर भारत के प्रधान राजाओं से मैत्री संबंध स्थापित कर जरासंध ने अपने पड़ोसी राज्यों — काशी, कोसल, अंग, बंग आदि —पर अपना अधिकार जमा लिया। कुछ समय बाद कलिंग का राज्य भी उसके अधीन हो गया। अब जरासंध पंजाब से लेकर असम और उड़ीसा तक के प्रदेश का सबसे अधिक प्रभावशाली शासक बन गया।

श्रीकृष्ण ने बड़े होने पर कंस को समाप्त किया। उसके अत्याचारों से मथुरा को छुटकारा मिला। अपने जामातृ और सहायक का कृष्ण द्वारा वध सुनकर जरासंध का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उसने शूरसेन और जनपद पर चढ़ाई करने का पक्का विचार कर लिया। शूरसेन और मगध के बीच युद्ध का विशेष महत्व है, इसीलिए 'हरिवंश' आदि पुराणों में इसका वर्णन विस्तार से मिलता है।

जरासंध की मथुरा पर चढ़ाई : उत्कट साम्राज्यवादी जरासंध ने पूरे दल-बल के साथ शूरसेन जनपद पर चढ़ाई की। पौराणिक वर्णनों के अनुसार उसके सहायक करुष का राजा दंतवक्र, चेदिराज शिशुपाल, कलिंगपति पौंड्र, भीष्मक पुत्र रुक्मी, काथ अंशुमान तथा अंग, बंग, कोसल, दशार्ण, भद्र, त्रिगर्त आदि के राजा थे। इनके अतिरिक्त शाल्वराज, कामरूप का राजा भगदत्त, सौवीर राज, गंधार का राजा सुबल नग्नजित, काश्मीर का राजा गोनर्द, दरद देश का राजा तथा कौरवराज दुर्योधन आदि भी उसके सहायक थे। मगध की विशाल सेना ने मथुरा पहुंच कर नगर के चारों फाटकों को घेर लिया। सत्ताईस दिन तक जरासंध मथुरा नगर को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घरे पड़ा रहा, पर वह मथुरा का अभेद्य दुर्ग न जीत सका। संभवतः समय से पहले खाद्य सामग्री के समाप्त हो जाने के कारण उसे निराश होकर मगध लौटना पड़ा।

दूसरी बार जरासंध पूरी तैयारी से शूरसेन पहुंचा। यादवों ने अपनी सेना इधर-उधर फैला दी। युवक बलराम ने जरासंध का खूब मुकाबला किया। लुका-छिपी के युद्ध द्वारा यादवों ने मगध सैन्य को बहुत छकाया। श्रीकृष्ण जानते थे कि यादव सेना की संख्या तथा शक्ति सीमित है और वह मगध की विशाल सेना का खुलकर सामना नहीं कर सकती। इसीलिए उन्होंने लुका-छिपी वाला आक्रमण ही उचित समझा। इसका फल यह हुआ कि जरासंध परेशान हो गया और हताश होकर ससैन्य लौट पड़ा। इस युद्ध में संभवतः करुष की सेना तथा चेदिसेना कुछ कारणों से जरासंध से अलग होकर यादवों में मिल गई थी।

पुराणों के अनुसार जरासंध ने अठारह बार मथुरा पर चढ़ाई की। सत्रह बार वह असफल रहा। अंतिम चढ़ाई में उसने एक विदेशी शक्तिशाली शासक काल-यवन को भी मथुरा पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। कृष्ण-बलदेव को जब यह ज्ञात हुआ कि जरासंध और कालयवन विशाल फौज लेकर आ रहे हैं तब उन्होंने मथुरा छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना ही श्रेयस्कर समझा। वे उग्रसेन, बलराम तथा अन्य बहुसंख्यक यादवों को लेकर सौराष्ट्र की नगरी द्वारावती (द्वारका) में चले गए और वहीं बस गए। शूरसेन जनपद पर जरासंध का आधिपत्य अधिक दिन तक नहीं रहा। कुछ समय बाद पांडवों की सहायता से कृष्ण ने जरासंध का वध करा दिया। जरासंध जैसे महापराक्रमी और क्रूर शासक का अंत कर देने से श्रीकृष्ण का यश चारों ओर फैल गया।

पांडवों ने श्रीकृष्ण की सलाह से राजसूय यज्ञ की तैयारी की। उन्होंने भारत के अनेक राज्यों को जीतकर अपना प्रभुत्व बढ़ाया। शूरसेन जनपद तथा उसके आस-पास के राज्यों को सहदेव ने विजित किया। राजसूय यज्ञ बड़े समारोह के साथ संपन्न हुआ। चेदि का यादव नरेश शिशुपाल, जो जरासंध का बड़ा मित्र था, इस यज्ञ में कृष्ण द्वारा समाप्त कर दिया गया।

महाभारत युद्ध : कौरव-पांडवों के घरेलू झगड़ों ने जब बड़ा विषम रूप धारण कर लिया और श्रीकृष्ण आदि की समझौते की चेष्टाएं विफल हो गईं, तब एक भीषण युद्ध का होना अनिवार्य हो गया। इस युद्धाग्नि में इच्छा या अनिच्छा से आहुति देने को प्रायः सारे भारत के शासक शामिल हुए। पांडवों की ओर मत्स्य, पंचाल, चेदि, करुष, पश्चिम मगध, काशी और कोसल के राजा हुए। सौराष्ट्र-गुजरात के वृष्णि यादव भी पांडवों के पक्ष में रहे। कृष्ण, युयुधान और सात्यकि इन यादवों के प्रमुख नेता थे। बलराम यद्यपि कौरवों के पक्षपाती थे, तो भी उन्होंने कौरव-पांडव युद्ध में भाग लेना उचित न समझा और वे तीर्थ पर्यटन के लिए चले गए। कौरवों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर शूरसेन प्रदेश के यादव तथा माहिष्मती, अवंति, विदर्भ और निषाद देश के यादव थे। इनके अतिरिक्त पूर्व में बंगाल, असम, उड़ीसा तथा उत्तर-पश्चिम एवं पश्चिमी भारत के सारे राजा और वत्स देश के शासक कौरवों की ओर रहे। इस प्रकार मध्यदेश का अधिकांश, गुजरात और सौराष्ट्र का बड़ा भाग पांडवों की ओर था और प्रायः सारा पूर्व, उत्तर-पश्चिम और पश्चिमी विंध्य कौरवों की तरफ। पांडवों की कुल सेना सात अक्षौहिणी तथा कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी थी।

दोनों ओर की सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हुईं। कृष्ण, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि ने पांडव सैन्य की व्यूह रचना की। कुरुक्षेत्र के प्रसिद्ध मैदान में दोनों सेनाएं एक-दूसरे के सामने आ डटीं। अठारह दिन तक यह महाभीषण संग्राम होता रहा। देश का अपार जन-धन इसमें स्वाह हो गया! कौरवों के शक्तिशाली सेनापति भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि धराशायी हो गए। अठारहवें दिन दुर्योधन मारा गया और महाभारत युद्ध की समाप्ति हुई। यद्यपि पांडव इस युद्ध में विजयी हुए, पर उन्हें शांति न मिल सकी। चारों ओर उन्हें क्षोभ और निराशा दिखाई पड़ने लगी। श्रीकृष्ण ने शरशय्या पर लेटे हुए भीष्मपितामह से युधिष्ठिर को उपदेश दिलवाया। फिर हस्तिनापुर में राज्याभिषेक उत्सव संपन्न कराकर वह द्वारका लौट गए। पांडवों ने कुछ समय बाद एक अश्वमेध यज्ञ किया और इस प्रकार वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट घोषित हुए। कृष्ण भी इस यज्ञ में सम्मिलित हुए और फिर द्वारका चले गए। कृष्ण की यह अंतिम हस्तिनापुर यात्रा थी। अब वह वृद्ध हो चुके थे। महाभारत संग्राम में उन्हें जो अनवरत परिश्रम करना पड़ा उसका भी उनके स्वास्थ पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कुछ दिनों बाद द्वारका के यादवों ने गृह-कलह द्वारा प्रभास तीर्थ में अपना नाश कर लिया। श्रीकृष्ण भी सौ वर्ष से ऊपर की अवस्था में गोलोक सिधारे।

यादव वंश का ह्रास : द्वारका के यादवों का नाश एक प्रकार से यदुवंश की प्रमुख शक्ति का नाश था। भारत में अन्य कई भागों में भी यादवों के राज्य थे, परंतु उनकी शक्ति और विस्तार प्रायः सीमित थे। श्रीकृष्ण ने अपने पराक्रम और बुद्धि-मत्ता से यादवों का एक विशाल राज्य स्थापित कर लिया था। उन्होंने यादव सत्ता की जो धाक भारत में जमा दी थी वह उनके बाद स्थिर न रह सकी। प्रभास के महानाश के अनंतर जो लोग द्वारका में बचे उनकी दशा सोचनीय हो गई। उग्रसेन वसुदेव तथा कृष्ण की अनेक स्त्रियां, कुछ पुराणों के अनुसार, संताप से पीड़ित हो आग में जल मरीं। जो स्त्रियां, बच्चे और बूढ़े शेष रहे उन्हें श्रीकृष्ण के आदेशानुसार अर्जुन अपने साथ लिवाकर हस्तिनापुर की ओर चले। दुर्भाग्य से मार्ग में आभीरों ने उनपर हमला किया और कुछ स्त्रियों को वे लूट ले गए। अर्जुन इस पर बहुत क्षुब्ध हुए परंतु वे आभीरों को रोक न सके। शेष यादवों को लेकर अर्जुन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इंद्रप्रस्थ पहुंचे और उन्हें वहां यथास्थान बसाया। पुराणों से ज्ञात होता है कि श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के लड़के वज्र या वज्रनाभ को अर्जुन ने शूरसेन राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

महाभारत के युद्ध के बाद शूरसेन : वज्र क बाद से ईसवीपूर्व छठी शती तक के लंबे अंतराल में शूरसेन जनपद पर कौन कौन से यादव या अन्य शासक हुए, इसका पता नहीं चलता। पुराणों के अनुसार महाभारत युद्ध से लेकर नंदराजा महापद्म-नंद के समय तक तेईस राजाओं ने मथुरा पर शासन किया। परंतु इन राजाओं के नाम आदि नहीं मिलते। संख्योल्लेख के अतिरिक्त पुराण इस विषय पर मौन हैं। संभवतः इन राजाओं में से कोई इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ जिसकी चर्चा पुराणकार करते। अन्यथा जहां शूरसेन के पड़ोसी जनपद कुरु और पंचाल के अनेक शासकों के उल्लेख मिलते हैं वहां मथुरा के कुछ राजाओं के नाम भी दिए जाते।

इस काल में कुरु-पंचाल जनपदों का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव शूरसेन जनपद पर अवश्य पड़ा होगा। शूरसेन की स्थिति इन दोनों शक्तिशाली राज्यों के बीच में थी। महाभारत युद्ध में शूरसेन और उत्तर पंचाल ने कुरुओं की सहायता की थी। संभवतः इसके बाद भी इन तीनों राज्यों की मैत्री जारी रही। उपनिषद काल में पंचाल राज्य में तत्वज्ञान की उन्नति से जनपद ने भी प्रेरणा ग्रहण की होगी और वहां भी इस विषय का विकास हुआ होगा। कुरु-पंचाल में प्रचलित श्रेष्ठ भाषा का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। शूरसेन जनपद में भी उस समय इसी संस्कृत भाषा का प्रचलन रहा होगा। संभवतः यहां भी ब्राह्मण तथा आरण्यक साहित्य का संकलन एवं कतिपय उपनिषदों का प्रणयन हुआ।

सोलह महाजनपद : महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के पहले भारत में सोलह बड़े जनपद थे। प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में ये 'सोलह महाजनपद' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई महाभारत युद्ध के पूर्व भी विद्यमान थे। इन सोलह बड़े राज्यों में एक शूरसेन भी था जिसकी राजधानी का नाम मथुरा मिलता है।

संदर्भ

1. देखिए : 'छांदोग्य उपनिषद्' (3, 17, 6) जिसमें देवकीपुत्र कृष्ण का उल्लेख है और उन्हें घोर आंगिरस का शिष्य कहा गया है.
2. उदाहरणार्थ, 'तैत्तिरीय आरण्यक' (10, 1, 6), 'पाणिनीय अष्टाध्यायी' (4, 3, 98) आदि. 'महाभारत' तथा 'हरिवंश', 'विष्णु', 'ब्रह्म', 'वायु', 'भागवत', 'पद्म', 'देवी-भागवत', 'अग्नि' तथा 'ब्रह्मवैवर्त' पुराणों में श्रीकृष्ण को प्रायः भगवानरूप में दिखाया गया है. तो भी इन ग्रंथों में कृष्ण के मानवरूप के दर्शन अनेक स्थलों पर मिलते हैं.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5

महात्मा बुद्ध और उनके पश्चात

महात्मा बुद्ध के जीवनकाल (ई० पू० 623-543) में मथुरा की दशा का कुछ परिचय प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य से प्राप्त होता है। इस साहित्य से पता चलता है कि ई० पू० 600 के बाद यहां अवंतिपुत्र नामक राजा राज्य कर रहा था। वह अवंति (पश्चिमी मालवा) के राजा चंडप्रद्योत का धेवता था। चंडप्रद्योत की दूसरी लड़की वासवदत्ता का विवाह कौशांबी के प्रसिद्ध राजा उदयन से हुआ। मथुरा के राजा को ब्याही गई पुत्री से अवंतिपुत्र का जन्म हुआ। तत्कालीन समृद्ध एवं विशाल अवंति राज्य के साथ मथुरा का वैवाहिक संबंध इस बात को सूचित करता है कि उस समय शूरसेन जनपद का स्थान गौरवपूर्ण माना जाता था।

बौद्धग्रंथों से ज्ञात होता है कि अवंतिपुत्र के राज्यकाल में एक बार बुद्ध स्वयं मथुरा गए। इस नगरी की कीर्ति से वह प्रभावित हुए होंगे और शायद इसी से उनका यहां आगमन हुआ। परंतु बुद्ध के ऊपर इस नगरी का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। यहां की राज्यव्यवस्था में उन्हें कई दोष दिखाई पड़े। साथ ही उन्हें यहां की भूमि में कोई आकर्षण नहीं दिखाई दिया। जो बातें महात्मा बुद्ध ने मथुरा में पाईं वे ये थीं : (1) यहां की भूमि ऊबड़-खाबड़ थी, (2) धूल और रेत की अधिकता थी, (3) भीषण कुत्तों का यहां बड़ा जोर था, (4) जंगली यक्ष बहुत तंग करते थे, और (5) भिक्षा मिलने में कठिनाई होती थी।

मथुरा में बुद्ध के प्रति सम्मान इसलिए नहीं प्रदर्शित किया गया, क्योंकि उस समय वहां वैदिक धर्म का जोर था। ब्राह्मणों ने स्वभावतः अपने धर्म के प्रतिस्पर्धी को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा होगा। बुद्ध ने मथुरा के जिन यक्षों का उल्लेख किया है वे यक्षों के पूजक लोग होंगे। उस समय यक्षमत माननेवाले अच्छी संख्या में मथुरा में थे। उन्हीं लोगों ने बुद्ध को परेशान किया होगा।

मथुरा में बुद्ध के प्रति किसी ने सम्मान का भाव न प्रकट किया हो, ऐसी बात नहीं है। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि मथुरा के अनेक निवासियों द्वारा बुद्ध को भिक्षा दी गई और उनके प्रति आदर प्रकट किया गया।[1] सिंहली बौद्ध साहित्य में मथुरा नगर को अत्यंत श्रेष्ठ नगर कहा गया है और उसे एक विस्तृत राज्य की राजधानी बताया गया है।[2]

बुद्ध के मथुरा आगमन के फलस्वरूप वहां के कुछ लोगों में बौद्ध धर्म की ओर झुकाव हुआ होगा। यदि यह बात सत्य है कि मथुरा का तत्कालीन शासक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवंतिपुत्र बौद्ध हो गया, तो हो सकता है कि यहां की कुछ जनता ने भी बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया हो। मौर्य शासनकाल में वहां बौद्धधर्म का एक अच्छा केंद्र स्थापित हो गया, जो कई शताब्दियों तक विकसित होता रहा।

प्रतीत होता है कि शैशुनागवंश के समय तक शूरसेन जनपद अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रहा। संभवतः अवंतिपुत्र के बाद उसके वंशजों का यहां पर शासन रहा। ई० पूर्व पांचवीं शती के अंत में मगध नंदवंश के अधिकार में हो गया। इस वंश में महापद्मनंद प्रतापी शासक हुआ। साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर महापद्मनंद ने तत्कालीन अनेक छोटे-बड़े स्वतंत्र राज्यों का अस्तित्व समाप्त कर दिया। इनमें एक शूरसेन जनपद भी था।

मौर्यवंश (ई० पूर्व 325-185) : नंदवंश की समाप्ति के बाद मगध पर मौर्यवंश का शासन प्रारंभ हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य (ई० पूर्व 325-298) इस वंश का पहला शासक था। उसने अपने प्रधानमंत्री चाणक्य (कौटिल्य) की सहायता से मगध साम्राज्य को बहुत बढ़ाया। दक्षिण के कुछ भाग को छोड़कर प्रायः समस्त भारत उसके अधिकार में आ गया।

अशोक : चंद्रगुप्त का पौत्र अशोक (ई० पूर्व 272-232) मौर्य सम्राटों में सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ। उसके समय में बौद्धधर्म की बड़ी उन्नति हुई। देश के मुख्य मुख्य स्थानों में अशोक ने बौद्ध स्तूपों का निर्माण कराया और शिलाओं तथा स्तंभों पर अनेक राजाज्ञाएं उत्कीर्ण करवाईं। प्रसिद्ध है कि मथुरा में यमुनातट पर अशोक ने विशाल स्तूपों का निर्माण कराया। जब चीनी यात्री हुएन-सांग ई० सातवीं शती में मथुरा गया तब उसने अशोक के बनवाए हुए तीन स्तूप वहां देखे। उनका उल्लेख इस यात्री ने अपने यात्रा विवरण में किया है।

यूनानियों द्वारा शूरसेन प्रदेश का वर्णन : चंद्रगुप्त मौर्य के समय भारत आए हुए मेगस्थनीज नामक यूनानी राजदूत ने शूरसेन प्रदेश की भी चर्चा की है। एरियन नामक एक दूसरे यूनानी लेखक ने मेगस्थनीज के विवरण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि 'शौरसेनाइ' लोग 'हेराक्लीज' को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। शौरसेनाइ लोगों के दो बड़े नगर है—'मेथोरा' और 'क्लीसोबोरा'। उनके राज्य में 'जोबरस'[3] नदी बहती है, जिसमें नावें चल सकती हैं। प्लिनी नामक एक दूसरे यूनानी लेखक ने लिखा है कि 'जोमनस' नदी मेथोरा और क्लीसोबोरा के बीच से बहती है।[4] इस लेख का भी आधार मेगस्थनीज का उपर्युक्त लेख है। टालमी नामक यूनानी लेखक ने मथुरा का नाम 'मोदुरा' दिया है और उसकी स्थिति 125° तथा 20°—30° पर बताई है। उसने मथुरा को 'देवताओं का नगर' कहा है।[5]

शुंगवंश (ई० पूर्व 185-100) : बृहद्रथ मौर्यवंश का अंतिम शासक हुआ। उसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने ई० पूर्व 185 में मारकर मौर्यवंश की समाप्ति कर दी। पुष्यमित्र से मगध साम्राज्य पर शुंगवंश का शासन आरंभ हुआ। 'महाभाष्य' ग्रंथ में पुष्यमित्र के समकालीन पतंजलि ने मथुरा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वहां के लोग सांकाश्य तथा पाटलिपुत्र के निवासियों की अपेक्षा अधिक रूपवान थे।[6] शुंगकाल में उत्तर भारत के मुख्य नगरों में मथुरा की भी गणना थी। कई बड़े व्यापारिक मार्ग मथुरा होकर गुजरते थे। यहां से होकर एक सड़क वेरंजा नगरी होती हुई श्रावस्ती को जाती थी। तक्षशिला से पाटलिपुत्र की ओर तथा दक्षिण में विदिशा और उज्जयिनी की ओर जाने वाली बड़ी सड़कें भी मथुरा होकर जाती थीं। भागवत, जैन तथा बौद्धधर्म का केंद्र होने के कारण इस काल में मथुरा की प्रसिद्धि बहुत बढ़ गई।

यवन आक्रमण : शुंगों के शासनकाल में उत्तर-पश्चिम की ओर से उत्तर भारत पर यवन आक्रमणों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में मिलता है। ये यवन बैक्ट्रिया के यूनानी शासक थे। डिमेट्रियस नामक यूनानी राजा पुष्यमित्र का समकालीन था। पश्चिमी पंजाब में अपनी शक्ति बढ़ा लेने के बाद डिमेट्रियस ने मथुरा, मध्यमिका (नगरी, चित्तौड़ के समीप) और साकेत (अयोध्या) तक आक्रमण किया। 'गार्गी संहिता' के युगपुराण में यवनों के द्वारा साकेत, पंचाल और मथुरा पर अधिकार करके कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) पहुंचने का विवरण मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि यवनों का यह आक्रमण भारत में काफी दूर तक हुआ तथा इसके कारण जनता में कुछ समय तक घबड़ाहट फैल गई। परंतु आपसी कलह के कारण यवनसत्ता मध्यदेश में जम नहीं सकी और उन्हें अंततः उत्तर-पश्चिम की ओर भागना पड़ा।

मथुरा के मित्रवंशी राजा : यद्यपि ई० पू० 100 के लगभग शुंगवंश की प्रधान शाखा का अंत हो गया, तो भी उसकी अन्य कई शाखाएं बाद में भी शासन करती रहीं। इन शाखाओं के केंद्र अहिच्छत्रा, विदिशा, मथुरा, अयोध्या तथा कौशांबी थे। प्रतीत होता है कि इनमें से कई शाखाएं पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों के समय से ही चली आ रही थीं और प्रधान शुंगवंश की अधीनता में विभिन्न प्रदेशों का शासन कर रही थीं। मथुरा से अनेक मित्र राजाओं के सिक्के मिले हैं, जिनके विवरण कनिंघम, स्मिथ, ऐलन आदि की मुद्रासूचियों में दिए गए हैं। जिन 'मित्र' नाम वाले शासकों के सिक्के मथुरा से प्राप्त हुए हैं वे—गोमित्र, ब्रह्ममित्र, दृढ़मित्र, सूर्यमित्र, विष्णुमित्र आदि हैं। इनमें से गोमित्र का समय ई० पू० 200 के लगभग प्रतीत होता है। अन्य राजाओं ने उसके बाद से लेकर ई० प्रथम शती तक शासन किया। इनके अतिरिक्त बलभूति के सिक्के तथा दत्त नाम वाले कई राजाओं के भी सिक्के मथुरा से प्राप्त हुए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संदर्भ

1. उदाहरणार्थ देखिए : 'विमानवत्थु' (भाष्य, पृ० 118-119), जिसके अनुसार उत्तर मथुरा की एक स्त्री ने बुद्ध को भिक्षा दी. 'अंगुत्तरनिकाय' (जि० 2, पृ० 57) में आया है कि एक बार बुद्ध मथुरा के समीप एक पेड़ की छाया में बैठे थे. वहां बहुत से गृहस्थ स्त्री-पुरुष आए, जिन्होंने बुद्ध की पूजा की. बुद्ध के एक शिष्य महाकाश्यप की पत्नी भद्रा कपिलानी मथुरा की निवासिनी थी.
2. देखिए : 'दीपवंश' (संपा० ओल्डनवर्ग), पृ० 27.
3. 'जोबरस' या 'जोमनस' नाम यमुना नदी के लिए प्रयुक्त हुआ है.
4. देखिए मैक्रिंडल : ऐंश्यंट इंडिया, मेगस्थनीज ऐंड एरियन, कलकत्ता, 1936, पृ० 206; प्लिनी : 'नेचुरल हिस्टरी', 6, 22.
5. मैक्रिंडल : 'ऐंश्यंट इंडिया ऐज डेस्क्राइब्ड वाइ टालमी; कलकत्ता, 1927, पृ० 124.
6. 'सांकाश्यकेभ्यश्च पाटलिपुत्रकेभ्यश्च माथुरा अभिरूपतरा इति ।'—('महाभाष्य', ; 3, 57).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

6

शक कुषाण काल

(लगभग ई० पू० 100 से 200 ई० तक)

शूरसेन जनपद पर शुंगवंश की प्रभुता लगभग ई० पूर्व 100 तक बनी रही। इसके बाद उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आया। दक्षिण की ओर से आंध्र के लोगों का जोर बहुत बढ़ गया। उन्होंने विदिशा तक पहुंचकर वहां की शुंग तथा काण्व सत्ता को समाप्त कर दिया। इधर मथुरा की ओर विदेशी शकों का प्रबल झंझावात आया, जिसने यहां के स्थानीय राजाओं की शक्ति को हिला दिया। उत्तर-पश्चिम भारत की तत्कालीन राजनीति परिस्थिति का लाभ उठाकर शक लोग आगे बढ़ने लगे। उन्होंने हिंद-यूनानी शासकों की शक्ति को कमजोर कर दिया था। जब उन्होंने देखा कि पूर्व में शुंगशासन ढीला पड़ रहा है, तब वे आगे बढ़े और शुंगसाम्राज्य के पश्चिमी भाग को उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया। इस जीते हुए प्रदेश का केंद्र उन्होंने मथुरा को बनाया, जो उस समय उत्तर भारत में धर्म, कला तथा व्यापारिक यातायात का एक प्रधान नगर था। शकों के उत्तर-पश्चिम राज्य की राजधानी तक्षशिला हुई। धीरे धीरे तक्षशिला और मथुरा पर शकों की दो पृथक शाखाओं का अधिकार कायम हो गया। काठियावाड़, गुजरात और मालवा में उनकी तीसरी शाखा का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

मथुरा के शक शासक (लगभग ई० पूर्व० 100 से ई० पूर्व 57 तक) : मथुरा पर जिन शकों ने राज्य किया उनके नाम सिक्कों तथा अभिलेखों द्वारा जाने गए हैं। प्रारंभिक क्षत्रप शासकों के नाम हगान और हगामष मिलते हैं उनके सिक्कों से प्रतीत होता है कि इन दोनों ने कुछ समय तक सम्मिलित रूप में शासन किया। संभवतः ये दोनों भाई थे। कुछ सिक्के केवल हगामष के नाम से मिले हैं। दो अन्य शासकों के नाम के साथ भी 'क्षत्रप' शब्द मिलता है। ये शिवघोष तथा शिवदत्त हैं। इनके सिक्के कम मिले हैं, पर वे बड़े महत्व के हैं।[1]

राजुबुल : हगान-हगामष के बाद राजुबुल मथुरा का शासक हुआ।[2] इसके सिक्के सिंधु घाटी से लेकर पूर्व में गंगा-यमुना दोआब तक मिले हैं, जिससे राजुबुल की विस्तृत सत्ता सिद्ध होती है। इसके समय में मथुरा राज्य की सीमाएं बढ़ गई होंगी।[3]

1869 ई० में मथुरा से पत्थर का एक सिंह शीर्ष मिला था, जो इस समय लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में है। इस पर खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में कई लेख उत्कीर्ण हैं। इनमें क्षत्रपशासकों तथा उनके परिवार वालों के नाम मिलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक लेख में महाक्षत्रप राजुबुल की पटरानी कमुइअ (कंबोजिका) के द्वारा बुद्ध के अवशेषों पर एक स्तूप तथा गुहा विहार नामक मठ बनवाने का जिक्र है। संभवतः यह विहार मथुरा में यमुना तट पर वर्तमान सप्तर्षि टीला पर था। यहीं उक्त सिंह ध्वज मिला था।

शोडास (लगभग ई० पूर्व 80-57) : राजुबुल के बाद उसका पुत्र शोडास राज्य का अधिकारी हुआ। उक्त सिंहशीर्ष के लेख पर शोडास की उपाधि क्षत्रप मिलती है। मथुरा से ही प्राप्त अन्य लेखों तथा सिक्कों पर उसे 'महाक्षत्रप' कहा गया है। कंकाली टीला, मथुरा से प्राप्त एक शिलापट्ट पर सं० 72 का ब्राह्मी लेख खुदा है, जिसके अनुसार स्वामी महाक्षत्रप शोडास के राज्य काल में एक जैन भिक्षु की शिष्या आमोहिनी ने एक जैन आयागपट्ट की प्रतिष्ठापना की। राजुबुल की पत्नी कंबोजिका ने मथुरा में यमुना तट पर जिस बौद्ध विहार का निर्माण कराया था उसके लिए शोडास ने अपने राज्यकाल में कुछ भूमि दान में दी। यह दान मथुरा के थेरवाद (हीनयान) मत वाले बौद्धों की सर्वास्तिवादी नामक शाखा के भिक्षुओं के निर्वाहार्थ दिया गया। सिंह शीर्ष के खरोष्ठी लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि शोडास के समय मथुरा के बौद्धों में हीनयान तथा महायान (महासंघिक)—इन दोनों मुख्य शाखाओं के अनुयायी थे और उनमें आपस में वाद-विवाद भी हुआ करते थे। एक बार सर्वास्तिवादियों ने महासंघिकों से शास्त्रार्थ में लोहा लेने के लिए सुदूर नगर (जलालाबाद) से एक प्रसिद्ध विद्वान् को आमंत्रित किया था।

शोडास के समय के अभिलेखों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण वह लेख है जो एक सिरदल पर उत्कीर्ण है। यह सिरदल मथुरा छावनी के एक कुए पर मिला था, जहां वह कटरा केशवदेव से लाया गया प्रतीत होता है। उस पर 12 पंक्तियों का एक संस्कृत लेख खुदा हुआ है, जिसके अनुसार स्वामी महाक्षत्रप शोडास के शासनकाल में वसु नामक व्यक्ति द्वारा महास्थान (जन्म स्थान) पर भगवान वासुदेव के चतुःशाला मंदिर के लिए तोरण (सिरदल से सुसज्जित द्वार) तथा वेदिका की स्थापना की गई।

शकों की पराजय : ई० पूर्व 57 के लगभग उज्जयिनी के उत्तर में मालवगण ने अपनी शक्ति संगठित कर ली। राष्ट्रप्रेमी मालव लोग चाहते थे कि भारत से शकों को भगाकर विदेशी शासन से छुटकारा पाया जाए। उन्होंने महाराष्ट्र के तत्कालीन सातवाहन शासकों से इस कार्य में सहायता ली और उज्जयिनी के शकों को परास्त कर दिया। यह पराभव शकों की शक्ति पर गहरा प्रहार सिद्ध हुआ और कुछ समय के लिए उत्तर भारत पर उनका राजनीतिक प्रभुत्व समाप्त हो गया।

मथरा का दत्तवंश : उज्जैन की हार का प्रभाव मथुरा पर भी पड़ा और यहां के क्षत्रप राजवंश का अंत हो गया। मथुरा और उसके आस-पास उपलब्ध सिक्कों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पता चलता है कि इसके बाद वहां पर दत्तवंश का अधिकार स्थापित हो गया। इस वंश के राजाओं के नाम पुरुषदत्त, उत्तमदत्त, रामदत्त, कामदत्त, शषदत्त तथा बलभूति मिले हैं।

कुषाण वंश (लगभग ईसवी सन के प्रारंभ से 200 ई० तक) : ई० सन के आरंभ से शकों की कुषाण नामक एक शाखा का प्राबल्य हुआ। विद्वानों ने उन्हें युइशि या ऋषिक-तुरुष्क (तुखार) नाम दिया है। इनका पहला शक्तिशाली सरदार कुजुल कडफाइसिस हुआ।

विम तक्षम (लगभग 40-77 ई०) : कुजुल के बाद उसका पुत्र विम तक्षम (विम कैडफाइसिस) 40 ई० के लगभग राज्य का अधिकारी हुआ। कुजुल द्वारा जीते हुए प्रदेशों के अतिरिक्त विम ने पूर्वी ओर अपने राज्य का विस्तार किया। इस भूभाग का प्रमुख केंद्र मथुरा नगर बना। विम के सिक्के पंजाब से लेकर बनारस तक बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इन पर एक ओर राजा की मूर्ति मिलती है और दूसरी ओर नंदी बैल के साथ खड़े हुए शिव की। यह राजा शिव का परमभक्त था। किसी अन्य देवता को इसने अपने सिक्कों पर स्थान नहीं दिया।

कनिष्क प्रथम (78-101 ई०) : विम के बाद उसका उत्तराधिकारी कनिष्क हुआ। विद्वानों का अनुमान था कि कनिष्क विम के परिवार का न होकर कुषाणों के किसी दूसरे घराने का था। परंतु अब अभिलेखीय प्रमाणों की उपलब्धियों से यह ज्ञात हुआ कि कनिष्क विम कैडफाइसिस के ही वंश का था। इसने अपने राज्यारोहण की तिथि (78 ई०) से एक नया संवत चलाया, जो 'शक' संवत के नाम से प्रसिद्ध है। कनिष्क कुषाणवंश का सबसे प्रतापी शासक हुआ।

कनिष्क के समय में मथुरा नगर की बहुमुखी उन्नति हुई। राजनीतिक केंद्र होने के साथ साथ यह नगर धर्म, कला, साहित्य एवं व्यापार का भी बड़ा केंद्र बना। कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके समय में साम्राज्य के अन्य प्रमुख स्थानों के साथ मथुरा में भी इस धर्म की बड़ी उन्नति हुई और अनेक बौद्ध स्तूपों, संघारामों आदि का निर्माण हुआ। मानुषी रूप में बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण मथुरा में इसी समय से प्रारंभ हुआ। महायान धर्म की उन्नति के फलस्वरूप पूजा के निमित्त विविध धार्मिक प्रतिमाओं का निर्माण अब बड़ी संख्या में होने लगा। कनिष्क के समय की बौद्ध प्रतिमाएं सैकड़ों की संख्या में मथुरा और उसके आस-पास से प्राप्त हो चुकी हैं। महायान मत के आचार्य वसुमित्र और 'बुद्धचरित्र' एवं 'सौदरनंद' आदि ग्रंथों के प्रसिद्ध रचयिता अश्वघोष कनिष्क की राजसभा के रत्न थे। इनके अतिरिक्त पार्श्व, चरक, नागार्जुन, संघरक्ष, माठर आदि अन्य कितने ही कवि, कलाकार और विद्वान कनिष्क की सभा में विद्यमान थे।

हुविष्क (106-138 ई०) : कनिष्क के बाद वासिष्क तथा उसके पश्चात हुविष्क

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कषाण साम्राज्य का शासक हुआ। हुविष्क के राज्यकाल के लेख 28वें वर्ष से लकर 60वें वर्ष तक के मिले हैं। इसके सिक्कों तथा लेखों के प्राप्ति स्थानों से पता चलता है कि काबुल से लेकर मथुरा के कुछ पूर्व तक हुविष्क का अधिकार फैला हुआ था।

मथुरा में गोकर्ण महादेव के नाम से पूजित एक विशाल प्रतिमा है। इसकी वेशभूषा विम कैडफाइसिस तथा कनिष्क की प्रतिमाओं जैसी है, जो मथुरा के मांट नामक स्थान से मिली हैं। गोकर्ण वाली मूर्ति सम्राट हुविष्क की हो सकती है।

कनिष्क की तरह हुविष्क भी बौद्ध धर्म का संरक्षक था। मथुरा में इसके द्वारा एक विशाल बौद्ध विहार की स्थापना की गई, जिसका नाम 'हुविष्क विहार' था। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्तूप और विहार इसके राज्यकाल में मथुरा में बनवाए गए। बौद्ध मूर्तियों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में यहां हुआ।

वासुदेव प्रथम (138-176 ई०) : हुविष्क के बाद मथुरा की राजगद्दी पर वासुदेव बैठा। उसके समय के लेख प्रायः मथुरा और उसके निकट से ही प्राप्त हुए हैं, जिससे अनुमान होता है कि वासुदेव के शासनकाल में कुषाण वंश की प्रधान शाखा का प्रभुत्व कम हो गया था। वासुदेव की अधिकांश मुद्राओं पर नंदी सहित शिव का अंकन मिलता है।

परवर्ती शासक : वासुदेव के राज्यकाल का अंतिम लेख 98वें वर्ष का मिला है, जिससे ज्ञात होता है कि इसी समय (176 ई०) के कुछ वर्ष बाद इसका देहांत हो गया। वासुदेव कुषाणवंश का अंतिम शासक था। उसके बाद कनिष्क तृतीय तथा वासुदेव द्वितीय आदि राजाओं के नाम सिक्कों तथा लेखों द्वारा ज्ञात हुए हैं।

शक-कुषाण शासन में वैदिक, बौद्ध तथा जन धर्मों का साथ साथ विकास हुआ। इस धार्मिक सहिष्णुता का प्रमुख केंद्र मथुरा नगर था। विभिन्न धर्मों से संबंधित देवालयों, प्रतिमाओं आदि का निर्माण इस काल में बड़े रूप में मथुरा और उसके आसपास हुआ।

संदर्भ

1. देखिए ऐलन : 'क्वायंस आफ एश्यंट इंडिया', भूमिका, पृ० 111-12.
2. इसका नाम रजुबुल, रंजुबुल तथा राजुल भी मिलता है.
3. कनिंघम का अनुमान है कि मथुरा के क्षत्रपों के समय मथुरा राज्य का विस्तार उत्तर में दिल्ली तक, दक्षिण में ग्वालियर तथा पश्चिम में अजमेर तक था. तथा देखिए कनिंघम 'क्वायंस आफ ऐंश्यंट इंडिया' (लंदन, 1891), पृ० 85 तक. ऐलन, 'क्वायंस : आफ एश्यंट इंडिया', भूमिका, पृ० 112-15.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7

नाग गुप्त युग

(लगभग 200 ई० से 600 ई० तक)

कुषाणों के विजेता

ई० दूसरी शती का अंत होते होते मथुरा प्रदेश तथा उसके पश्चिम से कुषाण सत्ता उखड़ गई। मध्यदेश तथा पूर्वी पंजाब से कुषाणों को हटाने में कई शक्तियों का हाथ था। कौशांबी तथा विंध्य के मघ राजाओं एवं पद्मावती, कांतिपुरी तथा मथुरा के नागवंशी लोगों ने मध्यदेश से तथा यौधेयों, मालवों और कुणिंदों ने राजस्थान और पंजाब से कुषाणों को भगाने में प्रमुख भाग लिया।

नाग शासनकाल (लग० 200-350 ई०)

नागों के शासनकाल में मथुरा में शैवधर्म की विशेष उन्नति हुई। नागदेवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण भी इस काल में बहुत हुआ। अन्य धर्मों का विकास भी साथ साथ होता रहा। 313 ई० में मथुरा के जैन श्वेतांबरों ने स्कंदिल नामक आचार्य की अध्यक्षता में मथुरा में एक बड़ी सभा का आयोजन किया। इस सभा में कई धार्मिक ग्रंथों के शुद्ध पाठ स्थिर किए गए। इसी वर्ष दूसरी ऐसी ही सभा वलभी में हुई। नागों के समय में मथुरा और पद्मावती बड़े बड़े समृद्ध नगरों के रूप में विकसित हुए। मथुरा में अनेक मंदिरों, महलों, मठों, स्तूपों तथा अन्य इमारतों का निर्माण हुआ। धर्म, कला-कौशल तथा व्यापार का यह प्रधान केंद्र हो गया। नागशासन का अंत होने के बाद मथुरा को राजनीतिक केंद्र होने का गौरव फिर कभी न प्राप्त हो सका।

गुप्तवंश

ई० चौथी शती के आरंभ में महाराज गुप्त के द्वारा गुप्तवंश की स्थापना की गई। उसका लड़का घटोत्कच हुआ, जिसका पुत्र चंद्रगुप्त प्रथम 320 ई० में पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर बैठा। उसने 'महाराजाधिराज' उपाधि ग्रहण की। वैशाली के लिच्छवि गणतंत्र की कन्या कुमारदेवी के साथ विवाह कर चंद्रगुप्त ने अपनी शक्ति बढ़ा ली।

समुद्रगुप्त (335-376 ई०) : चंद्रगुप्त प्रथम का उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त बड़ा प्रतापी एवं महत्वाकांक्षी शासक हुआ। उसके द्वारा भारत की दिग्विजय की गई, जिसका विवरण इलाहाबाद किले के प्रसिद्ध शिलास्तंभ पर विस्तारपूर्वक दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दिग्विजय में मथुरा को भी जीतकर समुद्रगुप्त ने उसे अपने साम्राज्य का एक अंग बना लिया। मथुरा के जिस शासक को उसने पराजित किया वह गणपति नाग था। मथुरा के नागशासन का अंत करने के बाद समुद्रगुप्त ने वहां की क्या व्यवस्था की, इसका ठीक पता नहीं चलता। उसके बाद उसका यशस्वी पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' गुप्त साम्राज्य का अधिकारी हुआ।

चंद्रगुप्त के समय मथुरा की दशा : चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय के तीन लेख अब तक मथुरा से प्राप्त हुए हैं। पहला लेख गुप्त संवत 61 (380 ई०) का है। यह मथुरा नगर में रंगेश्वर महादेव के समीप चंडूल-मंडूल बगीची से प्राप्त हुआ था। लेख लाल पत्थर के एक अठपहलू खंभे पर उत्कीर्ण है। यह चंद्रगुप्त के पांचवे राज्यवर्ष में लिखा गया था। लेख में उदिताचार्य के द्वारा उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर नामक शिवप्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना का जिक्र है। जिस खंभे पर यह उत्कीर्ण है, उसपर ऊपर त्रिशूल तथा नीचे दंडधारी रुद्र (लकुलीश) की मूर्ति बनी है। चंद्रगुप्त के शासनकाल के अद्यावधि उपलब्ध लेखों में यह सबसे पुराना है। तत्कालीन मथुरा में शैवधर्म के प्रचलन पर इसके द्वारा प्रकाश पड़ा है।

मथुरा से अन्य दोनों लेख कटरा केशवदेव से प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक में महाराज गुप्त से लेकर चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तक की वंशावली दी हुई है।[1] लेख के अंत में चंद्रगुप्त के द्वारा कोई बड़ा धार्मिक कार्य संपन्न किए जाने का संकेत मिलता है। लेख का अंतिम भाग खंडित होने के कारण यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि उसमें किस धार्मिक कार्य का कथन था। बहुत संभव है कि परम भागवत महाराजाधिराज चंद्रगुप्त के द्वारा श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया गया हो, जिसका विवरण इस लेख में रहा होगा।[2] तीसरा लेख जन्मस्थान की सफाई कराते समय 1954 ई० में प्राप्त हुआ। दुर्भाग्य से यह लेख बहुत खंडित है और इसमें गुप्त वंशावली के प्रारंभिक अंशों के अतिरिक्त शेष भाग टूट गए हैं।[3]

फाह्यान का वर्णन : चंद्रगुप्त के शासनकाल में फाह्यान नामक चीनी पर्यटक पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत आया। वह अन्य अनेक नगरों से होता हुआ मथुरा भी पहुंचा। इस नगर का जो वर्णन उसने किया है, उससे मथुरा की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का पता चलता है। वह लिखता है :

> यहां (मथुरा) के छोटे-बड़े सभी लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। शाक्यमुनि (बुद्ध) के बाद से यहां के निवासी इस धर्म का पालन करते आ रहे हैं। 'मोटुलो' (मथुरा) नगर तथा उसके आसपास 'पूना' (यमुना) नदी के दोनों ओर 20 संघाराम (बौद्ध मठ) हैं, जिनमें लगभग 3,000 भिक्षु निवास करते हैं। छह बौद्ध स्तूप भी हैं। सारिपुत्र के सम्मान में बना हुआ स्तूप सबसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक प्रसिद्ध है। दूसरा स्तूप आनन्द की तथा तीसरा मुद्गल पुत्र की याद में बनाया गया है। शेष तीनों क्रमशः अभिधर्म, सूत्र और विनय के लिए निर्मित किए गए हैं, जो बौद्धधर्म के तीन अंग (त्रिपिटक) हैं।

हूण आक्रमण : चंद्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम के समय में मथुरा में मूर्ति-कला की उन्नति जारी रही। इसका प्रमाण इस शासक के कई लेख हैं, जो मथुरा में तथा अन्यत्र मिले हैं। इस सम्राट के अंतिम समय में उत्तर-पश्चिम की अरक्षित सीमा की ओर से हूणों का भयंकर आक्रमण गुप्त साम्राज्य पर हुआ। यद्यपि कुमारगुप्त के यशस्वी पुत्र स्कंदगुप्त ने हूणों का बड़ा मुकाबला किया, तो भी इन बर्बरों के भीषण आक्रमणों ने गुप्त साम्राज्य की नींव हिला दी।

तोरमाण की अध्यक्षता में हूणों ने 500 ई० के लगभग पश्चिमी मध्यभारत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस समय उनकी शक्ति बहुत प्रबल थी। 484 ई० में उन्होंने ईरान के सम्राट को समाप्त कर वहां अपना आधिपत्य जमा लिया था। बल्ख को उन्होंने अपना केंद्र बनाया। उसके आगे दक्षिणपूर्व चलकर वे तक्षशिला आदि विशाल नगरों को उजाड़ते और राज्यों को नष्ट करते हुए, मथुरा होकर मध्य भारत तक पहुंच गए थे। मथुरा नगर उस समय बहुत समृद्ध था और वहां अनेक बौद्धस्तूपों और संघारामों के अतिरिक्त विशाल जैन तथा हिंदू इमारतें विद्यमान थीं। हूणों के द्वारा अधिकांश इमारतें नष्ट की गईं। प्राचीन मूर्तियां तोड़ डाली गईं और नगर को बरबाद किया गया। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में जिस विशाल मंदिर का निर्माण श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर किया गया था, वह भी हूणों की क्रूरता का शिकार हुआ होगा। ग्वालियर पहुंचने के पहले संभवतः हूण लोग मथुरा में कुछ समय तक ठहरे। वहां उनके सिक्कों के कई ढेर प्राप्त हुए हैं। हूणों के आक्रमणों के बाद से लेकर महमूद गजनवी के समय (1017 ई०) तक मथुरा में प्रायः शांति रही और इस अवधि में कोई उल्लेखनीय आक्रमण नहीं हुआ।

दसंर्भ

1. मथुरा संग्रहालय, संख्या क्यू० 5.
2. लेख के प्राप्तिस्थान कटरा केशवदेव से गुप्तकालीन बहुसंख्यक कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि इस काल में वहां अनेक सुंदर प्रतिमाओं सहित एक वैष्णव मंदिर विद्यमान था.
3 मथुरा संग्रहालय, सं० 3835.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

8

पूर्वमध्य काल

(लगभग 600 से 1200 ई० तक)

गुप्तसाम्राज्य की समाप्ति के बाद लगभग आधी शताब्दी तक उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति ठीक नहीं रही। अनेक छोटे-बड़े राजा विभिन्न प्रदेशों में अपनी शक्ति बढ़ाने में लग गए। सम्राट हर्षवर्धन के पहले तक कोई ऐसी प्रबल केंद्रीय सत्ता स्थापित न हो सकी जो छोटे-मोटे राज्यों को सुसंगठित करती। छठी शताब्दी के मध्य से बारहवीं शताब्दी के अंत तक क्रमशः मोखरि, वर्धन, गुर्जर-प्रतीहार तथा गाहड़वाल वंशों ने मथुरा प्रदेश पर शासन किया। कुछ समय तक यहां राष्ट्र-कूटों का भी आधिपत्य रहा।

हुएन-सांग का मथुरा वर्णन : वर्धनवंशी सम्राट हर्ष (606-647 ई०) के समय में हुएन-सांग नामक चीनी यात्री भारत आया। हुएन-सांग के यात्राविवरण से तत्कालीन मथुरा की दशा पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यह यात्री लगभग 635 ई० में मथुरा आया। उसने मथुरा का जो वर्णन किया है वह संक्षेप में इस प्रकार है :

> मथुरा राज्य का क्षेत्रफल 5,000 ली (लगभग 833 मील) तथा उसकी राजधानी मथुरा नगर का विस्तार 20 ली (लगभग 3.5 मील) है। यहां की भूमि उत्तम और उपजाऊ है। अन्न की पैदावार अच्छी होती है। यहां आम बहुत पैदा होता है जो छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार वाला आम छुटपन में हरा रहता है और पकने पर पीला हो जाता है। बड़ी किस्म वाला आम सदा हरा रहता है। इस राज्य में उत्तम कपास और पीला सोना उत्पन्न होता है।

यहां के निवासियों की बाबत वह लिखता है कि उनका स्वभाव कोमल है और वे दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। ये लोग तत्वज्ञान का गुप्तरूप से अध्ययन करना पसंद करते हैं। ये परोपकारी हैं और विद्या के प्रति बड़े सम्मान का भाव रखते हैं।[1]

मथुरा की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का परिचय हुएन-सांग के निम्नलिखित वर्णन से प्राप्त होता है :

> इस नगर में लगभग 20 संघाराम हैं, जिनमें 2,000 भिक्षु रहते हैं। इन भिक्षुओं में हीनयान और महायान इन दोनों मतों के माननेवाले हैं। यहां पांच देव मंदिर भी हैं, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते हैं। राजा अशोक के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाए हुए तीन स्तूप यहां विद्यमान हैं। विगत चारों बुद्धों के भी अनेक चिह्न दिखाई देते हैं। तथागत भगवान के साथियों के पवित्र अवशेषों पर भी स्मारक रूप में कई स्तूप बने हुए हैं।[2]

हर्ष की मृत्यु के बाद

हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्य स्थापित हो गए। इस समय से लेकर नवीं शती के प्रारंभ तक मथुरा का विशेष हाल नहीं मिलता। लगभग 700 से 740 ई० तक मथुरा प्रदेश कन्नौज के शासक यशोवर्मा की अधीनता में रहा।

प्रतीहार शासन में मथुरा

नवीं शती के आरंभ से लेकर दसवीं शती के अंत तक लगभग 200 वर्षों तक मथुरा प्रदेश गुर्जर-प्रतीहार साम्राज्य के अंतर्गत रहा। इस वंश में मिहिरभोज, महेन्द्रपाल तथा महीपाल बड़े प्रतापी शासक हुए। उनके समय में लगभग समस्त उत्तर भारत एकछत्र के अंतर्गत हो गया। अधिकांश प्रतीहार शासक वैष्णव या शैव मतावलंबी थे। उनके लेखों में उन्हें विष्णु, शिव, सूर्य तथा भगवती का भक्त कहा गया है। मिहिरभोज वैष्णव था। उसकी उपाधि 'आदिवराह' थी। उसके एक प्रकार के सिक्कों पर विष्णु के वराहावतार की आकृति मिलती है। नागभट द्वितीय, रामभद्र तथा महीपाल सूर्यभक्त थे। प्रतीहारों के शासनकाल में मथुरा में हिंदू पौराणिक धर्म की अच्छी उन्नति हुई। मथुरा में उपलब्ध तत्कालीन कलाकृतियों से इसकी पुष्टि होती है। ई० नवीं शती के आरंभ का लेख हाल में श्रीकृष्ण जन्मस्थान से प्राप्त हुआ है। इससे राष्ट्रकूटों के उत्तर भारत में आने तथा मथुरा में धार्मिक कार्य निष्पन्न होने का पता चलता है।

महमूद गजनवी का आक्रमण : ग्यारहवीं शती के आरंभ में गजनी के मूर्तिभंजक सुल्तान महमूद ने भारत पर सत्रह बार हमले किए। अपने नवें आक्रमण का निशाना महमूद ने मथुरा को बनाया। उसका यह आक्रमण 1017 ई० में हुआ। महमूद के मीरमुंशी अल-उत्वी ने अपनी पुस्तक 'तारीखे यामिनी' में इस आक्रमण का विस्तृत वर्णन किया है।

अलबरूनी : महमूद के आक्रमण के कुछ समय बाद अलबरूनी नामक प्रसिद्ध मुसलमान लेखक भारत आया। उसने लिखा है कि मथुरा नगर यमुनातट पर बसा था। भगवान वासुदेव कृष्ण के मथुरा में जन्म का तथा उनके चरित का वर्णन अलबरूनी ने कुछ विस्तार से किया है। परंतु उसने कई बातें भ्रामक लिखी हैं। एक जगह पर वह लिखता है कि कृष्ण के पिता वसुदेव शूद्र थे और वे जट्टवंश के पशुपालक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। अपनी पुस्तक में अलबरूनी ने मथुरा में व्यवहृत संवत का भी उल्लेख किया है और लिखा है कि मथुरा तथा कन्नौज के राज्यों में श्रीहर्ष का संवत चलता था।

गाहड़वाल वंश

11वीं शताब्दी का अंत होते होते उत्तर भारत में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जो गाहड़वाल वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश की राजधानी कन्नौज थी। मथुरा का प्रदेश भी कन्नौज साम्राज्य के अंतर्गत रहा।

मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर सं० 1207 (1150 ई०) में इस वंश के राजा विजयचंद्र द्वारा एक भव्य मंदिर का निर्माण कराया गया। उस समय विजयचंद्र संभवतः युवराज था और अपने पिता की ओर से मथुरा का शासक था। सं० 1207 के संबंधित पाषाण अभिलेख में राजा का नाम 'विजयपालदेव' दिया है। 'पृथ्वीराज रासो' में भी विजयचंद्र का नाम विजयपाल मिलता है।

1194 ई० में कुतुबुद्दीन की अध्यक्षता में मुसलमानों ने कन्नौज राज्य पर चढ़ाई की। चंदावर (जि० इटावा) के युद्ध में विजयचंद्र के प्रख्यात पुत्र जयचंद्र ने बड़ी बहादुरी से मुसलमानों का सामना किया। मुसलमान लेखकों के विवरणों से पता चलता है कि चंदावर का युद्ध भयंकर हुआ। कुतुबुद्दीन की फौज में पचास हजार सवार थे। जयचंद्र ने अपनी सेना का संचालन स्वयं किया, परंतु अंत में वह पराजित हुआ और मारा गया। अब कन्नौज से लेकर बनारस तक के क्षेत्र पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। कन्नौज, असनी तथा बनारस में बड़ी लूट-मार हुई।

इस प्रकार 1194 ई० में कन्नौज साम्राज्य का अंत हुआ और उसके साथ मथुरा प्रदेश भी दिल्ली सुलतानों के अधिकार में चला गया।

संदर्भ

1. देखिए वाटर्स : 'आन युवान च्वांग्स ट्रैवेल्स इन इंडिया', जिल्द 1, लंदन, 1904, पृ० 301-13.
2. वही.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9
परवर्ती इतिहास

1194 से 1526 ई० तक मथुरा दिल्ली के मुसलमान शासकों के आधिपत्य में रहा। गुलाम, खिलजी, तुगलक, सय्यद और लोदीवंश ने क्रमशः उत्तर भारत पर शासन किया। सिकंदर लोदी के समय (1488-1517 ई०) में मथुरा की बड़ी बरबादी हुई। वहां के मंदिर तथा धार्मिक स्थान नष्ट-भ्रष्ट किए गए। नगर में यमुना के मुख्य घाटों के ठीक ऊपर सिकंदर ने मस्जिदों और दूकानों का निर्माण कराया। राजा विजयपाल द्वारा जन्मस्थान पर निर्मित मंदिर भी सिकंदर की धर्मांधता का शिकार हुआ।

इस काल के मुसलमान लेखकों ने प्रायः मथुरा के प्रति उपेक्षा और घृणा का भाव प्रकट किया है। इस नगर को 'बुतपरस्ती का काबा' कहा जाता था। कई मुसलमान शासकों ने अपने फौजदारों को आदेश दिए थे कि वे बुतपरस्ती (मूर्ति-पूजा) को समाप्त करने के लिए सब प्रकार से प्रयत्न करें। परंतु इन सब बातों के बावजूद हिंदू समाज जीवित रहा। विवेच्य काल में कुछ ऐसे संत हुए जिन्होंने हिंदू जाति में नई शक्ति का संचार किया। रामानंद, कबीर, नानक, चैतन्य, मीरा, वल्लभाचार्य तथा अन्य अनेक विभूतियों ने शुद्ध भाव और भक्ति का प्रशस्त मार्ग जनता को दिखाया। वैष्णव धर्म की जो कल्याणी धाराएं इन महानुभावों द्वारा प्रवाहित की गईं उन्होंने इस देश को अपने माधुर्य से आप्लावित कर दिया। लोक-हित के लिए इन महात्माओं ने ऐसे साहित्य की सृष्टि की जिसने भारतीय जीवन को लंबे समय तक व्यापक रूप से प्रभावित किया।

मुगल काल
(1526 से 1718 ई० तक)

1526 के अंत से 1718 ई० तक लगभग दो शताब्दियों तक मथुरा मुगल साम्राज्य के अंतर्गत रहा। अकबर का शासनकाल (1556-1605 ई०) मथुरा के इतिहास में उल्लेखनीय है। इस समय यहां जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ उससे फिर साहित्य कला और संगीत की उन्नति हुई। मथुरा, वृंदावन, गोकुल, गोवर्धन आदि तीर्थ-स्थानों का महत्व बढ़ा और उनमें अनेक हिंदू मंदिरों का निर्माण हुआ। प्रसिद्ध है कि रूप, सनातन, जीव, हरिदास आदि भक्तों की ख्याति सुनकर अकबर स्वयं वृंदावन गया था। आंबेर तथा अन्य कई राज्यों के शासकों द्वारा वृंदावन तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोवर्धन में अनेक भव्य इमारतें अकबर के शासनकाल में बनीं। ब्रज की प्रसिद्ध रासलीला तथा वनयात्रा का प्रारंभ भी लगभग इसी समय हुआ। अकबर और उसके पुत्र जहांगीर के समय में ब्रजभाषा साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। सूरदास, नंददास आदि अष्टछाप के कवियों तथा हित हरिवंश, हरिदास, श्रीभट्ट, हरिराम व्यास, ध्रुवदास, रसखान आदि ने अपनी रचनाओं द्वारा ब्रज भाषा को बहुत समृद्ध किया।

जहांगीर के राज्यकाल (1605-27 ई०) में ओरछा के बंदेला राजा वीरसिंह देव के द्वारा तेंतीस लाख रुपया व्यय करके श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर केशवदेव का विशाल मंदिर बनवाया गया। वृंदावन में भी कई संदर मंदिर जहांगीर के समय में बने। शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह ने केशवदेव मंदिर के चारों ओर पत्थर का एक आकर्षक कटहरा बनवा दिया। बरनियर, मनूची, टेवरनियर आदि विदेशी यात्रियों ने इस मंदिर की बड़ी प्रशंसा की है। टेवरनियर के विवरण से ज्ञात होता है कि यह मंदिर भारत भर में अत्यंत उत्कृष्ट कोटि का माना जाता था और 10-12 कि०मी० की दूरी से दिखाई पड़ता था। यह एक बड़े अठपहलू चबूतरे के ऊपर बना था।

शाहजहां के बाद उसके लड़के औरंगजेब (1658-1707 ई०) ने अपने पूर्वजों की नीति को उलट दिया। और हिंदुओं के प्रति अत्याचार आरंभ कर दिया। 1666 ई० में उसने मथुरा के केशवदेव मंदिर में दाराशिकोह द्वारा लगाए गए कटहरे को अपने सूबेदार अब्दुन्नबी द्वारा तुड़वा डाला। इसके लगभग चार साल बाद उसने विशाल केशवदेव मंदिर का भी ध्वंस कर दिया और उसके स्थान पर एक मस्जिद बनवा दी। मथुरा-वृंदावन आदि तीर्थ स्थानों की बड़ी बरबादी हुई। अतः यहां की प्रमुख मूर्तियां सुरक्षा के लिए विभिन्न रजवाड़ों में भेज दी गईं। औरंगजेब ने मथुरा और वृंदावन के नाम भी बदल कर क्रमशः 'इस्लामाबाद' और 'मोमीनाबाद' रख दिए। परंतु ये नाम प्रचलित न हो सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

10

जाट मराठा आधिपत्य

(1718-1803 ई०)

जाटों का उत्थान : औरंगजेब के अंतिम समय में ब्रज प्रदेश के जाटों ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। गोकुला, राजाराम, चूड़ामन आदि जाट सरदारों ने मुगल शासन को कमजोर बनाने में सभी प्रकार के प्रयत्न किए। धीरे धीरे ब्रज के एक बड़े भाग पर चूड़ामन का आधिपत्य स्थापित हो गया। मथुरा भी इसमें सम्मिलित था। उसके लड़के बदनसिंह के समय में जाटों का प्रभुत्व बढ़ा।

नादिरशाह का आक्रमण : 1739 ई० में नादिरशाह का दिल्ली पर भयंकर आक्रमण हुआ। लूट और कत्लेआम करने के बाद उसके सिपाही मथुरा तक आ धमके। उन्होंने मथुरा-वृंदावन में भी लूट-मार की। कहते हैं कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि घनआनंद को भी उन्होंने वृंदावन में मार डाला। परंतु इस कथन के पुष्ट प्रमाण अप्राप्त हैं।

बदनसिंह के पुत्र सूरजमल के शासनकाल (1755-63 ई०) में जाट शक्ति का बड़ा उत्कर्ष हुआ। उसके समय में दक्षिण से मराठों के आक्रमण मुगल साम्राज्य पर लगातार होते रहे। जाटों से भी मराठों की अनबन हो गई और दोनों शक्तियों में कई बार युद्ध हुए।

अहमदशाह अब्दाली द्वारा मथुरा की बरबादी : अहमदशाह अब्दाली अफगानिस्तान में नादिरशाह का उत्तराधिकारी हो गया था। उसने दिल्ली पर अधिकार करने के बाद 1 मार्च, 1757 ई० को मथुरा पर भीषण आक्रमण किया। उस दिन होली का त्योहार था। चार घटों तक लगातार हिंदुओं की मार-काट होती रही। एक प्रत्यक्षदर्शी मुसलमान ने लिखा है कि सड़कों और बाजारों में सर्वत्र हलाल किए हुए लोगों के धड़ पड़े थे। और सारा मथुरा शहर जल रहा था। कितनी ही इमारतें धराशायी कर दी गईं। यमुना का जल नरसंहार के बाद लगातार सात दिन तक लाल रंग का बहता रहा। मथुरा के बाद महावन और वृंदावन में लूट-मार हुई।

1770 ई० में मराठों ने जाटों को बुरी तरह हराया। मराठों का सिक्का उत्तर भारत पर पूरी तरह जम गया। शीघ्र ही मथुरा पर भी उनका पूरा अधिकार स्थापित हो गया। डीग, बयाना आदि जाटों के प्रसिद्ध किले मराठों के अधिकार में आ गए।

महादजी सिंधिया : मथुरा के मराठा शासकों में महादजी सिंधिया का नाम विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

रूप से उल्लेखनीय है। उनके समय में मराठा शक्ति का बड़ा प्रसार हुआ। उन्होंने मथुरा को अपना केंद्र बनाया। मथुरा और ब्रज के अन्य स्थानों से महादजी को बड़ा प्रेम था। उन्होंने ब्रज के मंदिरों को उन्मुक्त हस्त से दान दिया और वहां के तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार कराया। श्रीकृष्ण जन्मस्थान के समीप विशाल पोतरा-कुंड का पुनर्निर्माण सिंधिया द्वारा कराया गया। इस कुंड के किनारे पर बैठकर महादजी अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की स्तुति के पद गाया करते थे। उनकी इच्छा थी कि जन्मस्थान पर भगवान केशव के मंदिर का निर्माण फिर से किया जाए। पर यह इच्छा पूरी न हो सकी। महादजी के प्रयत्नों से जनवरी, 1791 ई० तक मथुरा तथा ब्रज के अन्य तीर्थस्थान मराठों के प्रमुख पेशवा के अधीन हो गए।

ब्रिटिश आधिपत्य : 1795 ई० में महादजी की मृत्यु के बाद मराठा शक्ति का ह्रास तेजी से होने लगा। मराठा सरदारों में आपसी वैमनस्य बढ़ता गया। इधर ईस्ट इंडिया कंपनी अपना प्रभाव बराबर बढ़ाती जा रही थी। मराठों की आपसी कलह तथा उनमें योग्य नेताओं के अभाव का अंगरेजों ने पूरा लाभ उठाया। लासवाड़ी, असई आदि के युद्धों में मराठों की पराजय हुई। 30 दिसंबर, 1803 को सर्जी अंजनगांव की संधि द्वारा मथुरा पर पूर्णतया अंगरेजी शासन स्थापित हो गया। 1857 ई० के स्वतंत्रता संग्राम में तथा विभिन्न क्रांतिकारी आंदोलनों में मथुरा ने महत्वपूर्ण भाग लिया।

15 अगस्त, 1947 ई० को भारत की स्वतंत्रता के साथ मथुरा को भी ब्रिटिश बंधन से मुक्ति मिली। तब से इस नगर का आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास बराबर जारी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

11
मथुरा की वास्तुकला

मथुरा में ललित कलाओं के विकास का एक लंबा इतिहास है। भारत का प्राचीन धार्मिक केंद्र होने के कारण मथुरा में ईसवी सन से कई सौ वर्ष पहले स्थापत्य और मूर्तिकला का प्रारंभ हो चुका था। इस नगर की गणना भारत के प्रधान कला केंद्रों में की जाने लगी थी और मथुरा की एक विशेष कलाशैली बन गई थी। ईरान और यूनान की संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति के साथ जो समन्वय हुआ उसका मूर्त रूप हमें मथुरा की प्राचीन कला में दिखाई पड़ता है। शक और कुषाणवंशी राजाओं के शासनकाल में मथुरा की मूर्तिकला को अधिक विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय से जैन, बौद्ध तथा वैदिक भारत के इन तीनों प्रधान धर्मों को यहां के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में साथ साथ बढ़ने का अच्छा अवसर मिला। यह मथुरा के इतिहास में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। ईसवी पूर्व पहली शती से लेकर गुप्तकाल के अंत तक उक्त तीनों धर्मों से संबंधित कलावशेष बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए हैं।

गुप्तकाल के बाद भी ब्रज में मूर्तिकला और वास्तुकला की उन्नति कई शताब्दियों तक जारी रही, यद्यपि उसमें पहले जैसा सौष्ठव और निजस्व न रहा। दिल्ली सल्तनत के लगभग सवा तीन सौ वर्षों के आधिपत्यकाल में इस कलात्मक विकास में गतिरोध उत्पन्न हुआ। मुगलकाल में अकबर के समय ब्रज में जो सांस्कृतिक पुनरुत्थान हुआ उसके फलस्वरूप साहित्य, संगीत तथा चित्रकला का फिर से उद्धार हो सका। यहां मथुरा की वास्तु एवं मूर्तिकला का संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

जैन तथा बौद्ध इमारतें : मथुरा में जैन तथा बौद्धधर्म के बड़े केंद्र स्थापित हो जाने से यह युक्तिसंगत था कि यहां अनेक स्तूपों तथा विहारों का निर्माण होता। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त एक मूर्ति की चौकी पर खुदे हुए द्वितीय शती के एक लेख से पता चला है कि उस समय से बहुत पूर्व मथुरा में एक बड़े जैन स्तूप का निर्माण हो चुका था। लेख में उस स्तूप का नाम 'देव निर्मित वोद्व स्तूप' दिया है। वर्तमान कंकाली टीला की भूमि पर उस समय से लेकर 1100 ईसवी तक जैन इमारतों और मूर्तियों का निर्माण होता रहा। बौद्ध इमारतों की संख्या भी बड़ी थी। सम्राट अशोक, कनिष्क तथा उनके बाद के शासकों द्वारा मथुरा नगर तथा उसके आस-पास कितने ही स्तूपों तथा विहारों का निर्माण किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation,New Delhi

जब चौथी शती में चीनी यात्री फाह्यान मथुरा आया तब उसने यमुना नदी के दोनों किनारों पर बीस बौद्ध विहारों को देखा। उसने यहां के छह बड़े बौद्ध स्तूपों का भी उल्लेख किया है। मथुरा से प्राप्त शिलालेखों से अब तक अनेक बौद्ध विहारों का पता चला है। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार है : (1) हुविष्क विहार, (2) स्वर्णकार विहार, (3) श्री विहार, (4) चेतीय विहार, (5) चुतक विहार, (6) आपानक विहार, (7) मिहिर विहार, (8) गुहा विहार, (9) क्रौष्टकीय विहार, (10) रोषिक विहार, (11) ककाटिका विहार, (12) प्रावारिक विहार, (13) यशा विहार, (14) खंड विहार।

खेद है कि इन विहारों में से एक की भी इमारत नहीं बची। इन इमारतों के निर्माण में ईंटों और पत्थरों का प्रयोग होता था। इनका प्रकार सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि स्थानों के बौद्धविहारों जैसा रहा होगा। मथुरा में कुषाणकाल में सबसे अधिक विहारों का निर्माण हुआ, जैसा कि तत्कालीन अभिलेखों से सिद्ध होता है।

मथुरा के प्राचीन स्तूप भी ईंट और पत्थर के बने हुए थे। इनमें से सबसे नीचे एक चौकोर आधार बनाया जाता था। उसके ऊपर प्रायः गोलाकार रचना (अंड) होती थी। शीर्ष पर दंड (यष्टि) के सहारे छत्र रहता था। कभी कभी छत्रों की संख्या अधिक होती थी। स्तूप का बाहरी भाग विविध भांति के उत्कीर्ण शिलापट्टों से सजाया जाता था। स्तूप की परिक्रमा के लिए बाड़ा (वेष्टनी) बनाया जाता था, जिसे 'वेदिका' कहते थे। इसमें थोड़ी थोड़ी दूर पर खड़े खंभे आड़े पत्थरों (सूची) द्वारा जोड़े जाते थे। खंभों के सिरों पर जो पत्थर रखे जाते थे वे 'उष्णीष' या 'मूर्धस्थ पाषाण' कहलाते थे। वेष्टनी या वेदिका के प्रायः सभी पत्थर विविध भांति की उकेरी हुई मूर्तियों और अलंकरणों से युक्त होते थे। भीतर जाने आने के लिए वेदिका के प्रायः चारों ओर एक एक तोरणद्वार बना रहता था।

स्तूपों में तीर्थंकरों या भगवान बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों के पवित्र अवशेष—हड्डी, राख, नख, बाल आदि रखे जाते थे। जब बुद्ध का देहावसान (निर्वाण) हुआ तब उनके अवशेषों को आठ भागों में विभक्त किया गया और प्रत्येक के ऊपर एक एक स्तूप की रचना की गई। इसके बाद स्तूपनिर्माण की परंपरा जारी रही। कहा जाता है कि सम्राट अशोक ने भारत के विभिन्न स्थानों पर कुछ मिला कर 84,000 स्तूपों का निर्माण कराया। उसने मथुरा में भी कई बड़े स्तूप बनवाए इनमें से तीन का उल्लेख चीनी यात्री हुएन-सांग ने किया है। इस चीनी यात्री ने गौतमबुद्ध के साथियों के अवशेषों पर निर्मित स्तूपों की भी चर्चा की है। अशोक और उसके बाद निर्मित कुछ भग्नावशिष्ट स्तूप सांची, तक्षशिला, सारनाथ आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों में विद्यमान हैं। इनमें कई तो बहुत विशाल हैं। मथुरा में समय समय पर छोटे-बड़े जिन स्तूपों की रचना की गई, उनमें से कई के अवशेष उपलब्ध हैं।

हिंदू मंदिर : मंदिरों के निर्माण का आरंभ तथा उनका विकास स्तूपों से भिन्न रूप में हुआ। स्तूपों की रचना पवित्र अवशेषों के ऊपर होती थी। 'वाल्मीकी रामायण' में संभवतः इसी कारण उनके लिए 'स्मशान चैत्य' नाम आया है। परंतु मंदिर देवता के निवासस्थान माने जाते हैं और इसलिए उन्हें 'देवालय' कहा गया है।

मंदिर के भीतर एक या अनेक देवों की मूर्तियों का होना तथा उनकी पूजा होना अनिवार्य माना जाता था। मंदिर की रचनाशैली स्तूप से पृथक थी। शिखर शैली का होना मंदिर का निजत्व है, जो सुमेरु, त्रिकूट, कैलास आदि पर्वतों से लिया गया प्रतीत होता है। मंदिर के वहिर्भाग को प्रायः विविध अलंकरणों तथा देव, यक्ष, किन्नर, अप्सरादि की प्रतिमाओं से सजाया जाता था। मथुरा में संभवतः जैनों तथा बौद्धों के स्तूपों का निर्माण मंदिरों के बनने से कुछ पहले प्रारंभ हुआ। यहां हिंदुओं के जिस प्राचीनतम मंदिर का उल्लेख मिला है वह राजा शोडास के राज्यकाल में निर्मित हुआ। ऐसा एक सिरदल पर उत्कीर्ण शिलालेख से ज्ञात हुआ है। इस लेख में लिखा है कि वासुदेव कृष्ण का चतुःशाला मंदिर, तोरण तथा वेदिका का निर्माण वसु नामक व्यक्ति द्वारा महाक्षत्रप शोडास के शासन काल में संपन्न हुआ। यह मंदिर उस स्थान पर बनवाया गया जहां भगवान कृष्ण का जन्म माना जाता है। हो सकता है कि इसके पहले श्रीकृष्ण का कोई मंदिर मथुरा में रहा हो, पर उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला। अन्य हिंदू देवी-देवताओं की अनेक कुषाणकालीन मूर्तियां व्रज में मिली हैं। संभव है कि उनमें से कुछ के मंदिरों का निर्माण इस समय या इसके कुछ पहले आरंभ हो गया हो।

गुप्तकाल में मथुरा में हिंदू मंदिरों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर परम भागवत चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में एक भव्य मंदिर की रचना की गई। चीनी यात्री हुएन-सांग ने अपने समय में मथुरा के अनेक हिंदू मंदिरों के अस्तित्व का उल्लेख किया है, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते थे।

दुर्भाग्य से मथुरा में प्राचीन स्थापत्य का कोई ऐसा समूचा उदाहरण आज नहीं बचा, जिससे हम धार्मिक इमारतों, प्रासादों, साधारण मकानों आदि की निर्माणशैली की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर सकते। इमारती पत्थरों एवं अन्य अवशेषों के रूप में थोड़ी-बहुत सामग्री उपलब्ध हुई है, जिसके आधार पर हम मथुरा की कुछ इमारतों की रूपरेखा जान सकते हैं : प्राचीन प्रासाद या बड़े मकान कई तलों के होते थे। नीचे के खंड से ऊपर जाने के लिए जीने (सोपानमार्ग) होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। जीने के किनारों (पार्श्व) पर वेदिका स्तंभ लगे होते थे। मकानों में बैठक का कमरा, स्नानागार, भोजनगृह, शयनगृह, शृंगारकक्ष और अंतःपुर प्रायः अलग अलग होते थे। यथास्थान खिड़कियां (गवाक्ष) भी होती थीं।

मकानों में जो चौखट, दरवाजे, खंभे आदि लगाए जाते थे उन्हें लता-वृक्ष, पशु-पक्षी, कमल, मंगलघट, कीर्तिमुख, स्वस्तिक आदि अलंकरणों तथा विविध देवी-देवताओं, यक्ष-किन्नरों आदि की प्रतिकृतियों से अलंकृत किया जाता था। ईंट की बनी हुई इमारतों पर बाहर की ओर अनेक प्रकार की बेलबूटेदार ईंटें लगाई जाती थीं, जिन पर धार्मिक एवं लौकिक दृश्यों के कलात्मक चित्रण होते थे।

ग्यारहवीं शती के आरंभ में मथुरा के विशाल मंदिरों को बड़ी क्षति पहुंची। महमूद गजनवी के मीर मुंशी अल-उत्वी के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय मथुरा में हिंदू मंदिरों की संख्या बहुत बड़ी थी। मथुरा को जीतने के बाद महमूद द्वारा कितने ही मंदिर धराशायी किए गए और उनकी मूर्तियां तोड़ी गईं। मंदिरों की अपार संपत्ति लूटकर महमूद गजनी लौटा।

बारहवीं शताब्दी में मथुरा और उसके आस-पास बड़े मंदिर थे, जिनका विध्वंस मुसलमान आक्रांताओं ने किया। इनमें राजा विजयपाल देव द्वारा 1150 ई० में श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर बनवाया गया प्रसिद्ध मंदिर भी था। बारहवीं शती से लेकर मुगल सम्राट अकबर के समय तक ब्रज में मंदिरों का निर्माण नहीं के बराबर रहा। अकबर और जहांगीर के समय में मथुरा-वृंदावन में कुछ मंदिर तथा अन्य इमारतें बनीं, जिनमें से कई अब भी विद्यमान हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :

सती बुर्ज : यह 18 मीटर ऊंचा एक चौखंडा बुर्ज है। जयपुर के राजा भारमल (बिहारीमल) की रानी मथुरा में यमुनातट पर इसी स्थान पर अपने मृत पति के साथ सती हुई थीं। उनके लड़के राजा भगवान दास ने अपनी माता की स्मृति में सन 1574 में इस स्मारक का निर्माण करवाया। इसका शिखर पहले अधिक ऊंचा था, पर औरंगजेब के समय में उसका ऊपरी भाग तुड़वा दिया गया।

गोविंददेव मंदिर : वृंदावन के प्राचीन मंदिरों में यह मंदिर सर्वश्रेष्ठ है। कहा जाता है कि सम्राट अकबर वृंदावन आए तो वे इस पुण्यभूमि को देखकर बहुत प्रभावित हुए और उनकी अनुमति से यहां गोविंददेव आदि कई मंदिरों का निर्माण कराया गया। कहते हैं कि इस कार्य में राजकीय कोष से भी कुछ सहायता दी गई। गोविंददेव के मंदिर का निर्माण कछवाहा नरेश मानसिंह ने अपने दोनों गुरु रूप और सनातन के आदेश से करवाया था। यह मंदिर लगभग 4 मीटर ऊंची कुर्सी के ऊपर बना है और इसकी लंबाई 63 मीटर और चौड़ाई 38 मीटर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

औरंगजेब ने ऊपर की बुर्ज तुड़वा दी। बाद में ऊपरी भाग की आंशिक मरम्मत कराई गई।

मदनमोहन मंदिर : यह शिखराकार मंदिर वृंदावन में कालीदह घाट के पास है। इसकी निर्माणशैली भी बहुत सुंदर है। शिखर के ऊपर का आमलक अब तक सुरक्षित है।

गोपीनाथ मंदिर : मदनमोहन मंदिर से इसकी बनावट बहुत मिलती-जुलती है।

जुगलकिशोर मंदिर : यह मंदिर केशीघाट के पास है और अन्य प्राचीन मंदिरों की अपेक्षा अच्छी दशा में है। इसका भी शीर्ष (आमलक) सुरक्षित है। इस मंदिर का निर्माण 1627 ई० में हुआ।

हरदेव मंदिर : यह मंदिर गोवर्धन में कछवाहा राजा मानसिंह के द्वारा बनवाया गया था। सोलहवीं शताब्दी के स्थापत्य का यह एक अच्छा नमूना है।

उपर्युक्त सती बुर्ज तथा मंदिर लाल पत्थर के बने हुए हैं। इनकी रचनाशैली हिंदू और मुगल स्थापत्य के सामंजस्य का सुंदर उदाहरण है। महावन आदि कतिपय अन्य स्थानों में भी मध्यकालीन मंदिरों के कुछ खंडित अंश सुरक्षित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

12
मूर्तिकला

भारतीय विचारधारा में ईश्वर के सगुण रूप को प्रधानता दी गई है। भगवान कृष्ण की लीलाभूमि ब्रज में सगुण उपासना को अधिक महत्व प्राप्त होना स्वाभाविक था। यहां के साहित्य और शिल्पकला में श्रीकृष्ण के विविध चरितों का चित्रण दीर्घकाल तक होता रहा। साथ ही हिंदू धर्म के अन्य देवी-देवताओं को भी मूर्त रूप प्रदान किया गया। ईसवी पूर्व दूसरी शती से लेकर प्रायः बाहरवीं सती के अंत तक मथुरा में हिंदू देवों की प्रतिमाएं बनाई जाती रहीं। गुप्तवंशी शासक भागवत धर्म के अनुयायी थे। इस धर्म ने सहिष्णुता और समन्वय की जो भावना फैलाई उसका प्रभाव तत्कालीन शिल्पकला पर भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भागवत धर्मसंबंधी मूर्तियों के साथ साथ शैव मूर्तियां भी मथुरा के अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं। मध्यकाल में ब्रज में पौराणिक धर्म की प्रधानता होने से मूर्तिकला में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

मथुरा में कंकाली टीला तथा ब्रज के अन्य कई स्थानों से जैन धर्म संबंधी विशाल शिल्पसामग्री प्राप्त हुई है। इसी प्रकार कुषाणकाल के आरंभ से लेकर गुप्तकाल के अंत तक के जो बौद्ध अवशेष यहां मिले हैं उनसे बौद्धधर्म के क्रमिक विकास का पता चलता है। विविध धार्मिक संप्रदायों में थोड़ा-बहुत मतभेद स्वाभाविक था, पर वे आपस में मिलकर रहते थे। हम देखते हैं कि मथुरा के सहिष्णुतापूर्ण वातावरण में भारत के सभी धर्मों को साथ साथ शताब्दियों तक विकसित होने का अवसर मिला। यहां की समन्वयात्मक संस्कृति ने इन धर्मों के पारस्परिक भेदभावों को दूर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत का एक प्रमुख धार्मिक तथा कलाकेंद्र होने के नाते मथुरा को बड़ी ख्याति प्राप्त हुई। ईरान, यूनान और मध्य एशिया के साथ मथुरा का सांस्कृतिक संपर्क बहुत समय तक रहा। तक्षशिला की तरह मथुरा भी विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का एक बड़ा केंद्र हो गया। इसके फलस्वरूप विदेशी कला की अनेक विशेषताओं को मथुरा के कलाकारों ने ग्रहण किया और उन्हें देशी तत्वों क साथ मिलाने में कुशलता का परिचय दिया। तत्कालीन एशिया तथा यूरोप की संस्कृति के अनेक उपादान मथुरा कला के साथ घुल-मिल गए। कुषाणकालीन मथुरा की मूर्तिकला में हमें यह बात स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

प्राचीन मथुरा में मंदिरों तथा मूर्तियों के निर्माण में प्रायः लाल बलुए पत्थर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रयोग होता था। यह पत्थर मथुरा के समीप तांतपुर, फतहपुर सीकरी, रूपवास आदि स्थानों में मिलता है और मूर्ति गढ़ने के लिए बहुत उपयुक्त होता है। नीचे मथुरा की मूर्तिकला का परिचय दिया जाता है :

वैदिक पौराणिक मूर्तियां : हिंदू मूर्तिकला के विकास की दृष्टि से मथुरा का स्थान बहुत ऊंचा है। यहीं सर्वप्रथम अनेक देवों की प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। पौराणिक देवी-देवताओं के मूर्तिविज्ञान के अध्ययन के लिए यहां की कला में महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है।[1]

ब्रह्मा : मथुरा संग्रहालय में ब्रह्मा की कुषाणकालीन दो मूर्तियां हैं। इनमें सबसे दर्शनीय तथा अद्भुत मूर्ति 382 संख्यक है। इसमें ब्रह्मा के तीन मुख एक सीध में दिखाए गए हैं और चौथा बीच वाले सिर के पीछे है। बौद्ध मूर्तियों की तरह इसमें भी प्रभामंडल तथा अभय मुद्रा दिखाए गए हैं। ब्रह्मा की अनेक मध्यकालीन मूर्तियां भी मथुरा से मिली हैं। इनमें महावन से प्राप्त डी० 22 संख्यक प्रतिमा उल्लेखनीय है, जिसमें ब्रह्मा अपनी पत्नी सावित्री के साथ बैठे अंकित हैं।

शिव : शिव की विविध मूर्तियां मथुरा कला में मिली हैं। कुषाण शासकों में विम कैडफाइसिस, वासुदेव, कनिष्क तृतीय आदि के सिक्कों पर नंदी सहित शिव की एक या कई मुखवाली मूर्तियां मिलती हैं। कुषाणकालीन शिवलिंग की एक मूर्ति मथुरा से मिली है, जिसकी पूजा करते हुए शक लोग दिखाए गए हैं (संख्या 2661)। मथुरा में मुखलिंग रूप में भी शिव की उपासना प्रचलित थी। कुषाण तथा गुप्तकाल के कई सुंदर शिवलिंग यहां प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वह है जिसमें खड़े हुए चतुर्भुजी शिव को दिखाया गया है। 2528 संख्यक मूर्ति गुप्तकालीन एकमुखी लिंग तथा 516 संख्यक पंचमुखी शिवलिंग के अच्छे उदाहरण हैं। उत्तर गुप्तकालीन एक मूर्ति (सं० 2084) में नंदी के सहारे खड़े हुए शिव-पार्वती पत्थर के सामने तथा पृष्ठ भाग पर बड़ी सुंदरता के साथ आलेखित हैं। शिव-पार्वती की एक दूसरी मूर्ति (सं० 2577) में उन्हें कैलास पर्वत पर बैठे हुए दिखाया गया है। नीचे रावण पहाड़ को उठा रहा है, जिससे पर्वत का एक कोना ऊपर उठ गया है। पार्वती की भयभीत मुद्रा तथा शिव का क्रुद्धभाव दर्शनीय है। गुप्तकाल की अर्धनारीश्वर की मूर्तियां भी मिली हैं (सं० 362, 722), जिनमें आधा अंग शिव का और आधा अंग पार्वती का अत्यंत कलात्मक ढंग से दिखाया गया है। कई मूर्तियां हरिहर की भी प्राप्त हुई हैं।

विष्णु : मथुरा से विष्णु की कुषाणकालीन कई मूर्तियां ऐसी मिली हैं जैसी कि भारत में अन्यत्र प्राप्त नहीं होतीं। 933 संख्यक चतुर्भुजी विष्णुमूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। इसकी निर्माण शैली प्रारंभिक कुषाणकालीन बोधिसत्व प्रतिमाओं से बहुत मिलती है। विष्णु का एक हाथ अभय मुद्रा में है और दूसरे में वे अमृतघट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए हैं। शेष दो हाथों में गदा तथा चक्र हैं। इस प्रकार यहां विष्णु के साथ केवल दो आयुध हैं, बाद में शंख तथा पद्म मिलने लगते हैं।[2] एक दूसरी मूर्ति (सं० 2520) में भी विष्णु के ऐसे ही रूप का चित्रण है, जिसमें उन्हें बोधिसत्व मैत्रेय के समान अंकित किया गया है। विष्णु की कुषाणकालीन दो अष्टभुजी मूर्तियां भी मथुराकला में मिली हैं (सं० 1010 तथा 3520), जो मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व की हैं।

गुप्तकाल की एक मूर्ति (ई० 6) में चतुर्भुजी विष्णु को ध्यानमुद्रा में दिखाया गया है। उनके सिर पर अलंकृत किरीट (मुकुट) है। वे कुंडल, मुक्ताहार भुजबंध तथ बैजयंती भी धारण किए हैं। उनके लहरदार वस्त्र बड़े रोचक ढंग से प्रदर्शित किए गए हैं। यह मूर्ति गुप्तकालीन कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। मूर्ति के ऊपर एक छत्र है, जो पूर्ण विकसित कमलों तथा पत्ररचना से अलंकृत है। 2525 संख्यक विष्णुमूर्ति भी गुप्तकला का एक उत्तम उदाहरण है। यह महाविष्णु (नृसिंह-वराह-विष्णु) की मूर्ति है। बीच में भगवान विष्णु का मुख है तथा अगल-बगल नृसिंह तथा वराह अवतारों के मुख हैं। 2884 संख्यक मूर्ति भी ऐसी ही है, पर उसमें महाविष्णु के अंकन के साथ उनके विराट रूप के भी दर्शन हैं। मथुरा-कला में मिट्टी की भी कई सुंदर विष्णुमूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

कृष्ण-बलराम : भगवान कृष्ण की लीलाभूमि ब्रज में उनकी प्राचीन मूर्तियां बहुत कम प्राप्त हुई हैं। यह सचमुच आश्चर्यजनक है। उनके जीवन से संबंध रखने वाली जो सबसे प्राचीन मूर्ति मथुरा में मिली है वह ई० दूसरी शताब्दी की है (संख्या 1344) इस शिलापट्ट पर नवजात शिशु कृष्ण को एक सूप में रखकर वसुदेव गोकुल जाने के लिए यमुना पार करते हुए दिखाए गए हैं। यमुना नदी का बोध धारीदार लकीरों तथा जल-जंतुओं के द्वारा बड़ी सुंदरता के साथ कराया गया है। ई० 600 के लगभग की कृष्ण की एक अन्य मूर्ति प्राप्त हुई है (डी० 47), जिसमें वह अपने हाथ पर गोवर्धन उठाए हुए चित्रित हैं। पर्वत के नीचे गायें तथा ग्वालबाल खड़े हैं। कुछ वर्ष पूर्व कंस किला से श्रीकृष्ण की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली है (सं० 3374)। इसमें उन्हें कालियनाग का दमन करते हुए दिखाया गया है। लखनऊ संग्रहालय में भी कालियदमन की एक प्रतिमा है। कृष्ण की मध्यकालीन कुछ मूर्तियां भी मिली हैं, पर वे प्रायः साधारण कोटि की हैं।

बलराम की प्राचीन मूर्तियां अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं। मथुराकला में उनकी सबसे प्राचीन मूर्ति शुंगकाल की है, जिसमें वह हल तथा मूसल धारणा किए दिखाए गए हैं। यह मूर्ति लखनऊ संग्रहालय में है (सं० जी० 215) बलराम की कुषाण तथा गुप्तकालीन अनेक मूर्तियां मिली हैं, जिन पर वह हल, मूसल, वारुणी-पात्र आदि लिए हुए अंकित हैं (संख्या सी० 15, 435 तथा सी० 19)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामिकार्तिक : शिव के पुत्र स्वामिकार्तिक (कार्तिकेय) की भी अनेक मूर्तियां मथुरा में मिली हैं। इनमें उल्लेखनीय 2949 तथा 347 संख्यक हैं। पहली पर ब्राह्मी अभिलेख है, जिससे पता चलता है कि वह 89 ई० में बनाई गई थी। इसमें दायां हाथ अभयमुद्रा में है तथा बाएं में लंबी माला है। दूसरी मूर्ति में कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर बैठे हुए अंकित किए गए हैं। स्वामिकार्तिक की एक बहुत सुंदर गुप्तकालीन मृगमूर्ति (सं० 2794) है। इसमें वह शक्ति धारण किए हुए, मयूर पर बैठे दिखाए गए हैं। उनके मुखमंडल से तेज टपक रहा है। 466 संख्यक मूर्ति में शिव तथा ब्रह्मा द्वारा देवसेनापति कार्तिकेय का अभिषेक दिखाया गया है।

गणश : शिव के दूसरे पुत्र गणेश के कई रूप मथुराकला में मिलते हैं। बाल गणपति तथा नृत्य करते हुए एकदंत गणेश की कई गुप्तकालीन प्रतिमाएं मिली हैं। उनकी मध्यकालीन मूर्तियों में एक दशभुजी मूर्ति (सं० 252) उल्लेखनीय है। इसमें आकर्षक मुद्रा में बाल गणेश मोदक लिए हुए नृत्य कर रहे हैं।

इंद्र : मथुराकला में कुषाण तथा गुप्तकालीन इंद्रमूर्तियां कई मिली हैं। मथुरा संग्रहालय की 392 संख्यक इंद्रमूर्ति कला की अद्भुत कृति है। यह कुषाण काल के प्रारंभ की है। इसमें हाथ में वज्र धारण किए इंद्र खड़े हैं। उनके दोनों कंधों से नागमूर्तियां निकल रही हैं। इंद्र के सिर पर ऊंचा किरीट मुकुट है। अभय मुद्रा में खड़े हुए इंद्र की एक दूसरी मूर्ति भी उल्लेखनीय है। इसमें उनका वाहन ऐरावत हाथी भी है। इंद्र शैलगुफा में तपस्या करते हुए बुद्ध के प्रति सम्मान प्रकट करने क लिए ऐरावत सहित आए हुए इंद्र की कई मूर्तियां मिली हैं।

अग्नि : भारतीय कला में अग्नि की प्राचीन मूर्तियां बहुत कम प्राप्त होती हैं। मथुरा में अग्नि की जो प्रतिमाएं मिली हैं उनमें मूर्ति सं० 2880 कुषाणकालीन है। दूसरी (डी० 24) पूर्व मध्यकाल की है। दोनों में अग्निदेव के सिर के ऊपर से ज्वालाएं निकल रही हैं। दूसरी मूर्ति में उनका वाहन मेष (मेंढ़ा) भी बना है। कंकाली टीला से अग्नि की एक गुप्तकालीन मूर्ति मिली थी, जो अब लखनऊ संग्रहालय में है (सं० जे० 123)।

नवग्रह : नवग्रहों की प्रतिमाएं अनेक शिलापट्टों पर मिली हैं। राहु की एक अलग मूर्ति (सं० 2836) भी मिली है, जिसमें वह तर्पण करते हुए दिखाए गए हैं।

सूर्य : नवग्रहों में सूर्य का स्थान सबसे अधिक महत्व का माना जाता है। मथुराकला में इनकी दो प्रकार की मूर्तियां मिली हैं। पहली भांति वाली प्रतिमाओं में वह शक राजाओं की वेशभूषा (उदीच्यवेश) में अंकित मिलते हैं। सं० 269 ऐसी ही मूर्ति है। सूर्य के दाएं हाथ में कटार तथा बाएं में कमल का गुच्छा है। वह दो घोड़ों के रथ पर बैठे हैं। बाद में क्रमशः घोड़ों की संख्या चार तथा फिर सात हो जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसी अनेक मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। सूर्य की एक मूर्ति सेलखड़ी पत्थर की भी मिली है (सं० 1256)। इस पर वह सासानी राजाओं के पहनावे में दिखाए गए हैं। दूसरी भांति की मूर्तियों में बैठे हुए या खड़े सूर्य को अन्य देवों की भांति दिखाया जाता है। इनमें वह दोनों हाथों में कमल ग्रहण किए रहते हैं।

कामदेव : कामदेव की अनेक कलापूर्ण पाषाण एवं मृण्मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। 2552 संख्यक मिट्टी की मूर्ति में धनुष तथा पंचबाण धारण किए हुए कामदेव का आकर्षक रूप मिलता है। इसमें शूर्पक, मछुए तथा राजकुमारी कुमुद्वती की प्रेमकथा का चित्रण है। बुद्ध द्वारा मारविजय वाले दृश्यों में भी कामदेव की मूर्ति मिलती है।

हनुमान : हनुमान की 2 मीटर से कुछ अधिक ऊंची मूर्ति (डी० 27) मथुरा संग्रहालय में है जो 9वीं शताब्दी की है। मथुरा से प्राप्त हनुमान की एक दूसरी विशाल मूर्ति इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में है।

देवियों की मूर्तियां : देवों के साथ ही या अलग उनकी शक्तिरूपा देवियों की प्रतिमाएं भी मथुरा की मूर्तिकला में पाई जाती हैं। लक्ष्मी (सं 2520), सरस्वती (सं० डी० 57), पार्वती (सं० 1044), महिषमर्दिनी (सं० 541), सिंहवाहिनी दुर्गा (सं० 1783), सप्तमातृका (सं 2872, एफ० 38 एवं एफ० 41) तथा गंगा-यमुना (सं 1507, 2659) की अनेक कलापूर्ण मूर्तियां मिली हैं। इनके अतिरिक्त मातृदेवी की मौर्य तथा शुंगकालीन मृण्मूर्तियां मिली हैं (सं० 1592, 2222, 2241, 2243 आदि)। ये मूर्तियां प्रायः हाथ की बनी हुई हैं, सांचे द्वारा निर्मित नहीं। लक्ष्मी, सिंहवाहिनी, महिषमर्दिनी, वसुधारा आदि देवियों की मिट्टी की मूर्तियां भी मिली हैं।

जैन मूर्तियां

मथुरा में जैन मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल के पहले से होने लगा था। इस नगर के पश्चिम में कंकाली टीला नामक स्थान जैनधर्म का बहुत बड़ा केंद्र था। मथुरा-कला में जैन मूर्तियों को तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है : (1) तीर्थंकर प्रतिमाए, (2) देवियों की मूर्तियां तथा (3) आयागपट्ट आदि कृतियां।

तीर्थंकर मूर्तियां : जैनदेवता तीर्थंकर या 'जिन' कहलाते हैं। तीर्थंकर संख्या में चौबीस हैं। मथुराकला में आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर आदि तीर्थं-करों की मूर्तिया मिली हैं, जो प्रायः पद्मासन में बैठी हैं। कुछ खड़ी हुई (खड्गासन में) भी मिली हैं। ऐसी भी कई प्रतिमाएं मिली हैं जिनमें चारों दिशाओं में से प्रत्येक में एक एक तीर्थंकर मूर्ति बनी है। ऐसी प्रतिमाओं को 'सर्वतोभद्रिका' कहते हैं। मथुरा संग्रहालय में बी० 1, 67, बी० 68 तथा बी० 4 संख्यक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

जैन देवियों की मूर्तियां : जैन देवियों की भी मूर्तियां मिली हैं, जो अधिकतर गुप्त-काल तथा मध्यकाल की हैं। इनमें नेमिनाथ की यक्षिणी अंबिका (डी० 7) तथा ऋषभनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी (डी० 6) की मूर्तियां दर्शनीय हैं।

अन्य कलाकृतियां : मथुरा में कई कलापूर्ण आयागपट्ट मिले हैं। आयागपट्ट प्रायः वर्गाकार शिलापट्ट होते हैं, जो पूजा में प्रयुक्त होते थे। उनके ऊपर तीर्थंकर, स्तूप, स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि पूजनीय चिह्न उत्कीर्ण किए जाते थे। मथुरा संग्रहालय में एक सुंदर आयागपट्ट (सं० क्यू० 2) है, जिसे उस पर लिखे हुए लेख के अनुसार, लवणशोभिका नामक वेश्या की लड़की वसु ने दान में दिया था। इस आयागपट्ट पर एक विशाल स्तूप का चित्र तथा वेदिकाओं सहित तोरणद्वार बना हुआ है। आयागपट्टों के अतिरिक्त अन्य विविध शिलापट्ट तथा वेदिकास्तंभ भी मिले हैं, जिन पर जैनधर्म संबंधी मूर्तियां तथा चिह्न अंकित हैं। इन कलाकृतियों पर देवता, यक्ष-यक्षी, पुष्पित लतावृक्ष, मीन, मकर, गज, सिंह, वृषभ, मंगलघट, कीर्तिमुख आदि बड़े कलात्मक ढंग से उत्कीर्ण मिलते हैं।

बौद्ध मूर्तियां

यद्यपि भगवान बुद्ध का पूजन कुषाणकाल के कई शताब्दी पहले आरंभ हो चुका था पर वह उनके चिह्नों की पूजा तक ही सीमित था। बुद्ध की मूर्ति का निर्माण तक नहीं हुआ था। शुंगकाल के अंत तक हम यही स्थिति पाते हैं। सांची, भरहुत, बोधगया, सारनाथ आदि स्थानों से उस समय तक की जितनी बुद्ध कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं उन पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, स्तूप, भिक्षापात्र आदि का ही पूजन दिखाया गया है, मूर्तरूप में भगवान बुद्ध का पूजन कहीं नहीं। मथुरा से भी जो प्राचीन मूर्तियां मिली हैं उन पर इन चिह्नों का पूजन मिलता है। मथुरा में हिंदुओं के बलराम आदि देवों तथा जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं का निर्माण प्रारंभ हो चुका था। बौद्ध धर्मानुयायियों में भी अपने देव को प्रतिमा के रूप में देखने की उमंग का उठना स्वाभाविक था। मथुरा के कुषाण शासक मूर्तिनिर्माण के प्रेमी थे और उस समय यहां भक्तिप्रधान महायान धर्म प्रबल हो उठा था। फलस्वरूप कुषाणकाल में मथुरा के शिल्पियों द्वारा भगवान बुद्ध की मूर्ति का निर्माण किया गया। इधर गंधार प्रदेश में बौद्ध मूर्तियां बड़ी संख्या में बनाई जाने लगीं। मथुरा से प्राप्त बुद्ध और बोधिसत्व की प्रारंभिक प्रतिमाएं प्रायः विशालकाय मिली हैं, जैसी कि यक्ष-मूर्तियां मिलती हैं। कला के विकास के साथ ही मूर्तियां अधिक सुंदर बनने लगती हैं। मथुरा में गुप्तकाल में निर्मित बुद्ध की कुछ प्रतिमाओं में वाह्य सौंदर्य के साथ आध्यात्मिक गांभीर्य का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध तथा बोधिसत्व प्रतिमाएं : ज्ञान या संबोधि प्राप्त होने के पहले बुद्ध की संज्ञा 'बोधिसत्व' थी और उसके बाद 'बुद्ध'। इन दोनों की मूर्तियों में अंतर यह है कि 'बोधिसत्व' को मुकुट आदि विविध आभूषणों से अलंकृत राजवेश में दिखाया जाता है, पर बुद्ध को इनसे रहित केवल वस्त्र (चीवर) धारण किए हुए। बुद्ध के सिर पर बालों का जटा-जूट (उष्णीष) रहता है, जो उनके बुद्धत्व या ज्ञानसंपन्न होने तक सूचक है। दोनों प्रकार की मूर्तियां मथुरा में या तो खड़ी मिलती हैं या पद्मासन में बैठी हुई। द्वितीय प्रकार की मूर्तियां प्रायः कुषाणकाल में मिलती हैं। गुप्तकालीन मूर्तियां अधिकांश खड़ी मिलती हैं। मथुरा संग्रहालय में उत्कृष्ट बुद्ध प्रतिमाएं सं० ए० 1, ए० 2, ए० 5, ए० 40 तथा 2798 हैं।

मुद्राएं : बोधिसत्व तथा बुद्ध प्रतिमाएं हाथों के द्वारा अनेक भावों को व्यक्त करती पाई जाती हैं। उन भावविशेषों को 'मुद्रा' कहते हैं। मथुराकला में निम्न-लिखित चार मुद्राएं मिलती हैं।

ध्यान मुद्रा : इसमें बोधिसत्व या पद्मासन पर बैठे हुए तथा बाएं हाथ के ऊपर दायां रखे हुए दिखाए जाते हैं।

अभय मुद्रा : इसमें वे दाएं हाथ को उठाकर उसे कंधे की ओर मोड़कर श्रोताओं या दर्शकों को अभय प्रदान करते हुए दिखाए जाते हैं।

भूमिस्पर्श मुद्रा : इसमें ध्यानावस्थित बुद्ध दाएं हाथ से भूमि को छूते हुए प्रदर्शित किए जाते हैं। जब बोधगया में उनके तप को नष्ट करने का प्रयत्न कामदेव द्वारा किया गया तब उन्होंने इस बात की साक्षी देने के लिए कि उनके मन में कोई भी कामविकार नहीं, पृथ्वी का स्पर्श कर उसका आह्वान किया था, जिसे उक्त मुद्रा द्वारा व्यक्त किया जाता है।

धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा : इसमें भगवान बाएं हाथ की उंगलियों के ऊपर दाएं हाथ की उंगलियों को इस प्रकार रखते हैं मानो वे चक्र घुमा रहे हों। यह दृश्य सारनाथ में उनके द्वारा धर्म के सर्वप्रथम उपदेश को सूचित करता है। यहीं से उन्होंने संसार में एक नए धर्म का प्रवर्तन किया।

इनके अतिरिक्त एक 'वरद मुद्रा' भी है, जो मथुरा में नहीं मिलती। इसमें भगवान का दायां हाथ हथेली को इस प्रकार सामने किए नीचे लटकता है मानो वे वरदान दे रहे हों।

जातककथाएं तथा बुद्ध के जीवन की घटनाएं : बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों के अतिरिक्त मथुराकला में उनके पूर्वजन्मों की घटनाएं भी अनेक शिलापट्टों पर चित्रित मिलती हैं, जिन्हें 'जातक' कहते हैं। बौद्धधर्म के अनुसार बुद्ध होने के पहले भगवान कई योनियों में विचरे थे। उन्हीं पूर्वजन्मों की कहानियां जातक-कथाएं हैं। मथुरा में इस प्रकार के दृश्योंवाले कई पट्ट हैं। (सं० आई० 4

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि)। गौतम बुद्ध के वर्तमान जीवन की मुख्य घटनाएं—जन्म, ज्ञानप्राप्ति, धर्मचक्रप्रवर्तन, स्वर्गावतरण, परिनिर्वाण आदि भी मथुराकला में अंकित मिलती हैं (सं० एच० 1, एच० 11 आदि)।

वेदिका स्तंभों पर उत्कीर्ण प्रतिमाएं

स्तूपों का वर्णन करते समय वेदिका स्तंभों का उल्लेख किया जा चुका है। इन स्तंभों पर विविध मनोरंजक चित्रण मिलते हैं। मुक्ताग्रथित केशपाश, कर्णकुंडल, मौक्तिक एकावली, गुच्छक हार, केयूर, कटक, मेखला, नूपुर आदि धारण किए हुए स्त्रियों को विविध आकर्षक मुद्राओं में दिखाया गया है। कहीं कोई युवती उद्यान में फूल चुन रही है, कोई कंदुक क्रीड़ा में लग्न है (जे० 61), कोई अशोक वृक्ष को पैर से ताड़ित कर उसे पुष्पित कर रही है (सं० 2325), या निर्झर में स्नान कर रही है अथवा स्नानोपरांत तन ढक रही है (जे०4)। किसी के हाथ में वीणा (जे० 62) और किसी के हाथ में वंशी है तो कोई प्रमदा नृत्य में तल्लीन है। कोई सुंदरी स्नानागार से निकलती हुई अपने बाल निचोड़ रही है और नीचे हंस पानी की उन बूंदों को मोती समझकर अपनी चोंच खोले खड़ा है (1509)। किसी स्तंभ (जे० 5) पर वेणीप्रसाधन का दृश्य है, किसी पर संगीतोत्सव का और किसी पर मधुपान का (151)। इस प्रकार लोकजीवन के कितने ही दृश्य इन स्तंभों पर चित्रित हैं। कुछ पर भगवान बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबंधित विभिन्न जातक कहानियां (सं० जे० 4 का पृष्ठ भाग) और कुछ पर महाभारत आदि के दृश्य (नं० 151) भी हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्रकार के पशु पक्षी, लता-फूल आदि भी इन स्तंभों पर उत्कीर्ण किए गए हैं। ये वेदिकास्तंभ शृंगार और सौंदर्य की जीती-जागती कृतियां हैं, जिन पर कलाकारों ने प्रकृति तथा मानवजगत की सौंदर्यराशि रूपायित कर दी है।

यक्ष, किन्नर, गंधर्व आदि : मथुराकला में यक्ष, किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण तथा अप्सराओं की अनेक मूर्तियां मिलती हैं। ये सुख-समृद्धि तथा विलास के प्रतिनिधि हैं। संगीत, नृत्य और सुरापान इनके प्रिय विषय हैं। यक्षों की प्रतिमाएं मथुराकला में सबसे अधिक मिली हैं। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण परखम नामक गांव से प्राप्त लगभग 200 ईसवी पूर्व की विशालकाय यक्षमूर्ति (सी० 1) है। ऐसी एक दूसरी बड़ी मूर्ति मथुरा के बड़ौदा गांव से प्राप्त हुई। ये मूर्तियां कोरकर बनाई गई हैं, जिससे उनका दर्शन चारों ओर से हो सके। कुषाणकाल में ऐसी ही मूर्तियों के समान विशालकाय बोधिसत्व प्रतिमाएं निर्मित की गईं।

यक्षों में कुबेर तथा उनकी स्त्री हारीती का स्थान बड़े महत्व का है। इनकी अनेक मूर्तियां मथुरा में प्राप्त हुई हैं। कुबेर यक्षों के अधिपति तथा धन के देवता माने गए हैं। बौद्ध, जैन तथा हिंदू तीनों धर्मों में इनका पूजन मिलता है। कुबेर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन के आनंदमय रूप के द्योतक हैं और इसी रूप में इनकी अधिकांश मूर्तियां मिली हैं। संग्रहालय में संख्या सी० 2, सी० 5 तथा सी० 31 कुबेर की उल्लेखनीय मूर्तियां हैं, जिनमें वे सुरापान करते हुए चित्रित किए गए हैं। इनके हाथों में सुरा-पात्र, बिजौरा-नीबू तथा रत्नों की थैली या नेवला रहता है। कुछ वर्ष पूर्व कुबेर की एक सुंदर अभिलिखित मूर्ति (सं० 3232), प्राप्त हुई है जो ई० तीसरी शती की है। कुबेर के साथ उनकी स्त्री हारीती की भी मूर्ति मिलती है। यह प्रसव की अधिष्ठात्री देवी मानी गई है और मथुराकला में उसका चित्रण प्रायः बच्चों को गोद में लिए हुए मिलता है।

मथुराकला में यक्षियों का चित्रण बहुत मिलता है। इनके अतिरिक्त पूज्य प्रतिमाओं के साथ या विविध अलंकरणों के रूप में किन्नर, गंधर्व, सुपर्ण, विद्याधर आदि भी मिलते हैं।

नाग मूर्तियां : यक्षों आदि के समान प्राचीन मथुरा में नागों की पूजा मिलती है। इनका भी संबंध विविध धर्मों से पाया जाता है। भगवान कृष्ण के भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। विष्णु की शय्या भी अनंत नागों की बनी हुई कही गई है। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्व के चिन्ह नाग हैं। बौद्धधर्म के अनुसार मुचुलिंद नामक नाग ने ही भगवान बुद्ध के ऊपर छाया की थी तथा नंद और उपनंद नागों ने उन्हें स्नान कराया था। रामग्राम स्तूप की रक्षा भी नागों द्वारा की गई थी (मथुरा शिलापट्ट सं० आई० 9)। इस प्रकार भारतीय धर्मों में नागों का पूज्य स्थान है।

नागों की मूर्तियां पुरुषाकार तथा सर्पाकार, दोनों रूपों में मिलती हैं। शेषा-वतार रूप में बलराम की जो मूर्तियां मिलती हैं, उनके गले में बैजयंती माला आदि आभूषण तथा हाथों में मूसल और वारुणीपात्र दिखाए जाते हैं। मथुरा संग्रहालय में इस प्रकार की कुषाण तथा गुप्तकालीन कई सुंदर मूर्तियां हैं (1399, 3210 सी० 19 तथा 435)। नाग की सबसे विशाल मूर्ति सं० सी० 13 है जो 2 मीटर 40 से० मी० है। यह छड़गांव, जिला मथुरा से प्राप्त हुई थी। इसमें नाग की कुंडलियां बड़े ओजपूर्ण तथा ऐंड़दार ढंग से दिखाई गई हैं। इस मूर्ति की पीठ पर खुदे हुए लेख से ज्ञात होता है कि यह महाराजाधिराज हुविष्क के समय में चालीसवें वर्ष (118 ई०) में सेनहस्ती तथा भोणुक नामक दो मित्रों द्वारा बनवाकर प्रतिष्ठापित की गई। भूमिनाग (सं० 2'1) तथा दधिकर्ण नाग (सं० 1610) की भी मूर्तियां मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। बलदेव में दाऊजी की प्रसिद्ध विशाल-काय मूर्ति भी कुषाणकाल की उल्लेखनीय कृतियों में है।

शक-कुषाण राजाओं की प्रतिमाएं : मथुरा से शक-कुषाण राजाओं तथा शासक-वर्ग की कई अत्यंत महत्वपूर्ण मूर्तियां मिली हैं। मथुरा से लगभग 12 कि० मी०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूर मांट नामक स्थान में कुषाण राजाओं का एक देवकुल था, जहां से इन राजाओं की मूर्तियां मिली हैं।

विम कैडफाइसिस की मूर्ति (सं० 215) : इस विशालकाय मूर्ति में, जिसका सिर नहीं है, महाराज विम सिंहासनारूढ़ दिखाए गए हैं। वह लंबा चोगा, गुलूबद, सलवारनुमा पायजामा तथा चमड़े के तसमों से कसे हुए मोटे जूते पहने हैं। मूर्ति पर उपाधियों सहित राजा का नाम लिखा है।

कनिष्क की प्रतिमा (सं० 213) : कनिष्क कुषाणवंश का सबसे प्रतापी सम्राट था। इसकी वेशभूषा विम से बहुत मिलती-जुलती है। इसके दाएं हाथ में राजदंड तथा बाएं में तलवार है। मोटे जूते, जिन्हें गिलगिटी जूते कहते हैं, दर्शनीय हैं। उस मूर्ति पर भी उपाधियों सहित राजा का नाम लिखा है।

अन्य शासकों की मूर्तियां : चष्टन पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपवंश का जन्मदाता था। मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित 212 संख्यक कृति को चष्टन की मूर्ति कहा गया है। इस प्रतिमा पर तीन ब्राह्मी अक्षरों को 'षष्तन' पढ़ा गया और इस आधार पर मूर्ति चष्टन की मानी गयी। परंतु यह विचार मान्य नहीं लगता। मथुरा या उसके आस-पास चष्टन का न कोई लेख मिला है और न सिक्के। संभव है कि यह प्रतिमा मथुरा से संबंधित किसी कुषाण शासक की हो। इस मूर्ति की वेशभूषा उपर्युक्त मूर्तियों के समान है। इसका चोगा जरीदार है तथा कमरबंद भी अलंकृत है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त उपर्युक्त वेशभूषा धारण किए हुए अनेक शक राजकुमारों तथा सरदारों की मूर्तियां प्राप्त हुई है।

गांधारकला में शक महिषी की मूर्ति (सं० एफ 42) : यह मूर्ति यमुना किनारे स्थित सप्तर्षि टीला से प्राप्त हुई है और नीले सिलेटी पत्थर की बनी है। यद्यपि यह 'गांधारकला' की कृति है, जो मथुराकला से भिन्न है, तथापि मथुरा में इसका पाया जाना बड़े महत्व की बात है। उसी स्थान से प्राप्त खरोष्ठी के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि मथुरा के महाक्षत्रप राजुल की महारानी कमुइअ (कंबोजिका) ने यहां बौद्धस्तूप तथा विहार बनवाए। संभवतः यह मूर्ति उसी महारानी की है।

मिट्टी की मूर्तियां : मथुराकला में विविध धर्मों के देवों की अनेक प्रकार की मूर्तियों के मिलने के साथ ऐसी कृतियां भी मिली हैं जिनका संबंध मुख्यतया लोकजीवन से है। ऐसी मूर्तियों मे मृण्मूर्तियों का स्थान बड़े महत्व का है। यद्यपि मिट्टी की कुछ मूर्तियां देवी-देवताओं – विशेषतः हिंदू धर्म के देवताओं — की भी मिली हैं, पर उनकी संख्या थोड़ी है। अधिकांश मिट्टी की मूर्तियां नागरिक तथा ग्रामीण लोकजीवन पर प्रकाश डालती हैं। मथुरा संग्रहालय में इनकी संख्या बहुत अधिक है। ये अधिकतर टीलों में से तथा यमुना नदी में से प्राप्त हुई हैं। इनके मुख्य दो प्रकार हैं : एक तो वे जो मौर्यकाल में या उसके पूर्व मातृदेवियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि की मूर्तियों के रूप में हाथ से गढ़कर बनाई जाती थीं और दूसरी सांचों द्वारा निर्मित। दूसरे प्रकार की मूर्तियां शुंगकाल से लेकर लगभग पूर्व मध्यकाल तक पाई जाती हैं।

ई० पू० 200 से लेकर 600 ई० तक की मृण्मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें से कुछ तो बच्चों के खेलने के लिए बनती थीं जैसे : हाथी, घोड़े, गाड़ी आदि खिलौने। शेष मूर्तियां वे हैं जिनमें जीवन के विविध अंगों का वैसा ही प्रदर्शन है जैसा कि हम पाषाण पर पाते हैं। मथुरा संग्रहालय की कुछ उल्लेखनीय मिट्टी की मूर्तियां ये हैं—सं० 2595, जिस पर राजसी ठाठ में एक स्त्री पंखा लिए खड़ी है। सं० 2853, जिस पर कोई राजकुमार रथ पर बैठकर बाहर जा रहा है। सं० 2921, जिस पर स्त्री-पुरुष का जोड़ा चित्रित है। सं० 2350, जिस पर किन्नर-किन्नरी हवा में उड़ान ले रहे हैं। सं० 1621, जिस पर सुंदर साड़ी पहने तथा बच्चे को अंक में लिए एक स्त्री बैठी है। सं० 2592, जिस पर शुकक्रीड़ा का चित्रण है तथा सं० 2429 जो सुंदर बालों से सज्जित पुरुषसिर है।

उपर्युक्त मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मथुरा से नागरिकों, सेठों, धर्मवीरों तथा विदेशी लोगों के अनेक प्रकार के सिर मिले हैं। मथुरा के स्थानीय संग्रहालय में सं० 2827, 157, 1599, 2564, जी० 34 तथा 2122 संख्यक पाषाणसिर कला की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। मथुरा से हाथीदांत तथा धातु की भी बनी हुई अनेक प्राचीन प्रतिमाएं मिली हैं।

मथुरा की विशाल कलाराशि में वस्तुतः भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन की अत्यंत मूल्यवान सामग्री उपलब्ध है।

संदर्भ

1. विस्तार के लिए देखिए : 'फोगल', 'मथुरा कैटलाग' (1911); वासुदेवशरण अग्रवाल, 'मथुरा म्यूजियम केटलाग' (1939).
2. मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले में मल्हार नामक स्थान पर विष्णु की एक दुर्लभ अभिलिखित प्रतिमा मिली है. इस पर ई० पूर्व दूसरी शती का ब्राह्मी लेख उत्कीर्ण है. प्रतिमा को चारों ओर से कोर कर बनाया गया है. उन्हें वल्कल धारण किए हुए दिखाया गया है. उनके आयुध गदा, चक्र और असि दिखाए गए हैं.—देखिए कृष्णदत्त वाजपेयी तथा श्यामकुमार पांडेय, 'मल्हार', (सागर, 1978), फलक 10.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

13
चित्रकला

सोलहवीं शती के पहले ब्रज में चित्रकला के स्वरूप का ठीक ठीक पता नहीं चलता। जिस प्रदेश में वास्तुकला एवं मूर्तिकला का एक लंबे समय तक विकास होता रहा वहां चित्रकला की ओर भी लोगों की प्रवृत्ति रही होगी। परंतु यहां बने हुए अधिक प्राचीन चित्र उपलब्ध नहीं है।

मुगलसम्राट अकबर के समय अन्य कई ललित कलाओं के साथ चित्रकला का भी पुनरुद्धार हुआ। 'गीतगोविन्द', 'बालगोपालस्तुति' तथा कई जैनग्रंथों की सचित्र प्रतियां प्राप्त हुई हैं। 16वीं शती के ये चित्र पश्चिम भारत की 'अपभ्रंश शैली' के हैं। इनमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का आलेखन मिलता है। स्त्री-पुरुषों की तत्कालीन वेशभूषा का यथार्थ चित्रण इनमें उपलब्ध है। अकबर ने ईरान की चित्रकला तथा उक्त अपभ्रंश शैली के उद्भूत राजस्थानी चित्रकला के समन्वय द्वारा एक नई शैली का प्रारंभ किया, जिसे 'मुगल शैली' कहते हैं। अकबर से लेकर शाहजहां के समय तक मुगलशैली के बहुसंख्यक चित्र प्राप्त हुए हैं।

अपभ्रंश शैली के प्रायः साथ साथ कश्मीर में भी एक चित्रशैली चल रही थी, जिसे 'कश्मीरशैली' कहते हैं। कृष्ण-लीला के अनेक सुंदर चित्रों का निर्माण कश्मीर में हुआ। ब्रज के कुछ गेय पदों में कश्मीरी चित्रों की चर्चा मिलती है। वास्तव में कश्मीरी साज-सज्जा और चित्ररचना इतनी आकर्षक थी कि वह ब्रज में बहुत प्रचलित हुई। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि परमानन्द का एक पद इस प्रकार है :

तहँ रच्यो हिंडोरो धवलबानी कास्मीरी खंभ।
हीरा-पिरोजा पाँति मुक्ता और अति आरंभ॥
बनी चित्र-विचित्र सोभा तीर धनु संधान।
जहँ राम-रावण युद्ध क्रीडा देखिये अनुमान॥
जहँ बहुत गोरस माँट मथना चलन कंकण-हीर।
मल्लिका सिर गूंथ बेनी स्रवण सोभित बीर॥

सूरदास ने भी चित्ररचना का उल्लेख इस प्रकार किया है :

चित्र सराहत मुर-मुर चितवत गोपी अधिक सयानी।

ग्वालिनि आप तन देख, मेरे लाल तन देखरी।
मीत जो होय तो चित्र अवरेख री॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजस्थानी चित्रशैली का उद्भव पश्चिम भारत की पूर्वोक्त अपभ्रंश शैली से माना जाता है। इस पर कश्मीर की प्राचीन चित्रकला का भी प्रभाव पड़ा। सोलहवीं शती के बाद राजस्थानी चित्रशैली का विस्तृत प्रसार हुआ। जैन पोथियों को चित्रित करने की जो प्रणाली गुजरात तथा पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित थी, वह सोलहवीं शती के बाद भी जारी रही। परंतु अब अपभ्रंश शैली का स्थान राजस्थानी शैली ने ले लिया। जैन ग्रंथों तथा संस्कृत की कई पोथियों में राजस्थानी शैली के चित्र मिले हैं। महाकवि केशवदास की 'रसिक-प्रिया', बिहारी की 'सतसई', सुंदरदास कृत 'सुंदर-श्रृंगार' आदि ब्रजभाषा के श्रृंगारप्रधान ग्रंथों की भी अनेक सचित्र प्रतियां मिली हैं, जिन पर राजस्थानी कला के चित्र हैं।

ब्रज में सोलहवीं शती के आरंभ से राजस्थानी शैली का एक महत्वपूर्ण केंद्र स्थापित हुआ। नाथद्वारा के चित्रों में राधा-कृष्ण की जो विविध लीलाएं चित्रित हैं उनका विकसित रूप पूर्वी राजस्थान के किशनगढ़, मथुरा और गोवर्धन में मिलता है। ब्रज की इस चित्रशैली में मत्स्य के आकार वाली बांकी आंख दर्शनीय है। किशनगढ़ में प्राप्त कुछ चित्रों में राधा-कृष्ण की छवि का अंकन अत्यंत मनोरम हुआ है। बरसाना की मोरकुटी में राधा-कृष्ण की युगल छवि का एक सुंदर चित्र सुरक्षित है, जिसमें राधा-कृष्ण की छवि का आलेखन अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। इस चित्र में विविध आभूषणों से अलंकृत राधा-कृष्ण नृत्य की मुद्रा में दिखाए गए हैं। उनकी भावभंगी, अंगविन्यास तथा प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। चित्र में नीचे यह दोहा लिखा है :

मैं तू, तू मैं हो गये, मैं तन तू मम प्रान।
अब कोऊ ना कहि सकै, मैं अरु तू है आन॥

यह मोरकुटी मानपुर गांव के सामने पहाड़ों के शिखर पर स्थित है। कहा जाता है कि मानिनी राधिका को प्रसन्न करने के लिए श्रीकृष्ण वहां पर मोर बनकर नाचे थे। मथुरा के कवि नवनीत का इस विषय पर छंद इस प्रकार है :

छोर पटुकाके ये जुगल पंख फहरान,
काछनी घूमघेर पूंछ अनुहारी कौ।
'नवनीत' चन्द्रिका विचित्र बर सोहत है,
अंग घनस्याम नीलकंठ छवि भारी कौ॥
कुहुक विनय सिर सुरस कलंगी दिये,
पिये नव नेहमेह विदित बिहारी कौ।
जोरकर अधिक अधीन ह्वै तिया की ओर,
मोर बनो नाचै चितचोर प्रानप्यारी कौ॥

सोलहवीं और सत्रहवीं शती में मथुरा, वृंदावन, गोकुल, बरसाना और गोवर्धन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनेक मंदिरों में कृष्णलीला का चित्रण किया गया। परंतु इन स्थानों में औरंगजेब के समय बड़ी बरबादी हुई, जिसके फलस्वरूप प्राचीन इमारतों के साथ उनके चित्र भी नष्ट हो गये। अठारहवीं शती में राजस्थानी कलाशैली का पुनरुत्थान हुआ। जयपुर और नाथद्वारा के अतिरिक्त उदयपुर, जोधपुर, बूंदी, दतिया तथा किशनगढ़ में विविध चित्रों का निर्माण बड़ी संख्या में होने लगा। कागज पर बनाए गए चित्रों के अतिरिक्त भित्तिचित्र तथा पटचित्र भी बनाए जाते थे। इन चित्रों के मुख्य विषय कृष्ण-लीला, राग-माला, बारहमासा तथा लोककथाएं हैं।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शती की अनेक सचित्र पोथियां भी मिली हैं। 'बिहारी-सतसई', केशव की 'रसिक प्रिया', मतिराम का 'रसराज' आदि ग्रंथों की अनेक सचित्र प्रतियां प्राप्त हुई हैं। मथुरा के प्राचीन द्वारिकाधीश मंदिर तथा गोवर्धन की भरतपुर राजाओं की छतरियों पर भित्तिचित्रों के अनेक सुंदर रूप उरेहे गए। गोवर्धन की दो विशाल छतरियों में ये चित्र अब भी सुरक्षित हैं। इनमें कृष्ण की रास आदि विविध लीलाएं, युद्ध तथा लोकजीवन के विविध दृश्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मस्थान के समीप पोतराकुंड में तथा शिवताल नामक स्थान में ब्रज की चित्रकला के कुछ सुंदर नमूने अब भी देखे जा सकते हैं।

वस्त्रों पर भी कृष्णलीला संबंधी विविध चित्र बनाए जाते थे। इन्हें 'चित्रपट' कहते थे। मंदिरों में उत्सवों के अवसर पर इन पटों को टांगा जाता था। ब्रज में ऐसे चित्रपट अब भी बनते हैं तथा वस्त्रों की कलापूर्ण छपाई का काम भी होता है।

मथुरा में रंगवल्ली (रंगोली) का भी बहुत प्रचार है। रंगों द्वारा अनेक प्रकार के चित्र और चौके बनाना 'रंगवल्ली' कहलाता है। इसका सबसे उत्तम उदाहरण सांझीकला है। इसमें कागज के अनेक खाके काटकर उनकी सहायता से रंग भरना पड़ता है। सूखे रंगों के ये चित्र विविध प्रकार के होते हैं। कुछ चित्र पानी के ऊपर भी बनाए जाते हैं। यह कला ब्रज की एक अनूठी कला है। मथुरा के ज्योतिषी बाबा की सांझी सबसे अधिक प्रसिद्ध रही है। सांझी का उल्लेख प्राचीन ब्रजभाषा-साहित्य में बहुत मिलता है। गोपियां फूलों और रंगों की सहायता से इस प्रकार के चित्रों की रचना करती थीं।

ब्रज में विविध उत्सवों और त्योहारों के अवसर पर आकर्षक फूलबंगले बनते हैं। इनमें केले के कलापूर्ण अलंकरण बनाए जाते हैं। सावन में हिंडोलों के अवसर पर भी ब्रज की चित्रकला के दर्शन होते हैं। रासलीला के शृंगार भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। ब्रज के गांवों में विविध प्रकार के भित्तिचित्र और व्रतचित्र देखने को मिलते हैं। मथुरा जनपद के ख्यातिप्राप्त चित्रकला तथा कलामर्मज्ञ जगन्नाथ अहिवासी ने ब्रज की चित्रकला पर महत्वपूर्ण कार्य किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

14
संगीत तथा नाट्य

मथुरा में संगीत की परंपरा बहुत प्राचीन है। ई० पूर्व 300 से पहले के पुरातत्व संबंधी अवशेष हमें यहां नहीं प्राप्त हो सके, अन्यथा संगीत के संबंध के उन अवशेषों द्वारा कुछ जानकारी प्राप्त हो सकती। मौर्य-शुंग काल से लेकर लगभग 650 ई० तक की जो बहुसंख्यक कलाकृतियां मिली हैं उनसे ज्ञात होता है कि ब्रज में संगीत का स्थान ऊंचा था। यहां के निवासियों के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का संगीत एक अपरिहार्य अंग था। लखनऊ तथा मथुरा के राज्य संग्रहालयों में मथुरा से प्राप्त ऐसे अनेक शिलाखंड हैं जिन पर मनोविनोदार्थ वंशी, वीणा आदि बजाती हुई वनिताएं, यात्रोत्सवों में साथ साथ गाते-बजाते हुए स्त्री पुरुष तथा बहु प्रकार के नृत्यों में संलग्न नारियां अंकित हैं। अनेक मृण्मूर्तियों पर नृत्य और वाद्यरत नारियों के रोचक आलेखन हैं। यहां कुछ उदाहरण दिए जाते हैं :

1. नर्तकी यक्षी की मूर्ति (मथुरा सं० जे० 2) : यह सुंदर मूर्ति एक वेदिकास्तंभ के ऊपर उकेरी हुई है। यक्षी नृत्यमुद्रा में खड़ी है। वह मोटा गुलबंद-कर्णफूल, मुक्ताहार, अंगद (बाजूबंद), कटक (हस्ताभूषण) तथा नूपुर (पैर के आभूषण) पहने है। उसकी कमर पर एक चौड़ी मेखला है। मेखला के कुछ ऊपर वह एक वस्त्र कस रही है। सिर पर मुक्ताग्रथित भारी केशपाश है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार के जूड़े को धम्मिल्ल कहा गया है। नर्तकियों की इस प्रकार की वेशभूषा का वर्णन संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। यह मूर्ति ई० पू० दूसरी शताब्दी की है और तत्कालीन मथुरा की नर्तकियों का एक सुंदर उदाहरण है।

2. नर्तकी मूर्ति (लखनऊ सं० बी० 75) : यह मूर्ति भी एक वेदिका स्तंभ पर अंकित है। नर्तकी कटि से लेकर घुटनों के कुछ ऊपर तक वस्त्र पहने है। शेष भाग अनावृत है। आभूषणों में वह कर्णकुंडल, गुलूबंद, एकलड़ी हार, (एकावली), कटक तथा नूपुर पहने हैं। नृत्य करते करते उसने अपने दोनों घुटने भूमि पर टेक दिए हैं। दायां हाथ नाभि के सामने आ गया है और बायां सिर के ऊपर उठा है। नृत्य के वेग के कारण उसकी एकावली हिल-डुल गई है। उठे हुए पैरों से गिरकर नूपुर नीचे आ गए हैं। नर्तकी का भाव बड़ा आकर्षक है। यह कुषाणकालीन (प्रथम या दूसरी शताब्दी की) कृति है।

3. अशोक दोहद का दृश्य (मथुरा सं० जे० 55) : इसमें नर्तकी के बाएं पैर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आघात द्वारा पुष्पित अशोक वृक्ष है। नर्तकी अशोक के एक फूल को दाएं हाथ से पकड़कर अपनी सफलता पर गर्वान्वित हो रही है। कालिदास ने सुंदरी के चरणाभिघात द्वारा अशोक के पुष्पित होने की कविकल्पना को इस प्रकार व्यक्त किया है :

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी।

(मेघदूत 2, 18)

4. असि नृत्य (लखनऊ सं० जे० 265) : इस मूर्ति में कदंब वृक्ष के नीचे खड़ी हुई नटी बाएं हाथ में तलवार पकड़े है तथा दाएं से कदंब की डाली को झुकाकर उसके पुष्पों से अपना केशशृंगार करने का अभिनय कर रही है।

5. प्रेमोन्मत्ता का नृत्य (लखनऊ सं० बी० 92) : शुक पक्षी द्वारा अपने प्रेमी का आगमन समाचार पाकर सुंदरी हर्षोन्मत्त होकर नृत्य करती है। कामदेव का संदेशवाहक तोता आगत पतिका के नीवीविमोचन के बहाने उसे किसी भावी आनंद का संदेश दे रहा है।

6. धर्म में संगीत (लखनऊ सं० जे० 268) : इस वेदिका स्तंभ पर ऊपर के भाग में एक दंपत्ति स्तंभ की प्रदक्षिणा कर रहे हैं। नीचे खपरैल के तले नृत्य हो रहा है। आभूषणों से सुसज्जित एक नर्तकी नृत्य कर रही है और दो खड़ी हुई स्त्रियां ताल दे रही हैं। नीचे बैठी हुई दो वनिताएं ढोलक बजा रही हैं।[1]

7. यात्रोत्सव (मथुरा स० आई० 382) : प्रस्तुत शिलाखंड पर नगरद्वार से बाहर निकलकर गाते-बजाते धर्मयात्रा में जाते हुए लोग दिखाए गए हैं। तीन व्यक्ति बड़े डफ बजा रहे हैं और बीच में एक बालक शंख बजाता हुआ जा रहा है। इसका निर्माण समय ई० पूर्व प्रथम शती है।

8. मथुरा संग्रहालय में यात्रोत्सव का एक दूसरा दृश्य पत्थर के एक टुकड़े पर चित्रित है। इसमें एक पुरुष वीणा बजाते हुए जा रहा है। उसके पीछे अन्य पुरुष वंशी बजा रहा है। फिर हाथ जोड़े एक स्त्री खड़ी है और उसके पीछे दो बालक तथा एक पुरुष हाथ जोड़े आ रहे हैं।

9. वीणा-वादिका (मथुरा सं० जी० 48) : इस पर ताड़ वृक्ष के नीचे के पर्यंक पर बैठी हुई स्त्री वीणा बजा रही है।

10. वंशी वादिकाएं (मथुरा सं० एफ० 17, 18 तथा 22) : पुष्पित वृक्षों के नीचे खड़ी हुई, विविध आभूषणों से सुसज्जित वनिताएं वंशी बजा रही हैं।

11. सं० 405 पर नृत्योत्सव में संलग्न कुटुंबिनी स्त्रियों का चित्रण है।

12. शिलापट्ट सं० 276 पर बाजे-गाजे समेत पूजनार्थ जाते हुए एक राजकुमार दिखाया गया है।

13. अंतःपुर में संगीत : इस शिलापट्ट पर तीन महिलाएं अंकित हैं—दो मोढ़ों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर आसीन हैं और तीसरी खड़ी है। मोढ़े पर बैठी हुई एक स्त्री सप्ततंत्री (सात तारों वाली) वीणा बजा रही है और उसके सम्मुख बैठी हुई स्त्री गाना गा रही है। दाहिने हाथ के द्वारा वह तान मिलाती हुई प्रतीत होती है। खड़ी हुई स्त्री वंशी बजाने में रत है।[2]

संगीत का मनोरंजक उन्मुक्त रूप, जो कला और साहित्य दोनों में मिलता है, मथुरा में एक दीर्घकाल तक जारी रहा। प्राप्त कलावशेषों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि मुसलमानों के आगमन के पूर्व तक यहां प्राचीन संगीत की धारा बहती रही होगी। गुप्तकाल के बाद की संगीत परिचायक मूर्तियों की संख्या बहुत कम है। 12वीं शती से 16वीं शती के मध्य तक ब्रजभूमि पर लगातार एक के बाद दूसरा आक्रमण होता रहा, जिससे यहां की संस्कृति को गहरा धक्का पहुंचा। राजनीतिक अशांति में संगीत का ह्रास स्वाभाविक था। सोलहवीं शती के मध्य में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ संगीत का ब्रजभूमि में अभ्युदय हुआ।

गेय संगीत को रास ध्रुपद, तान, खयाल, लावनी आदि रूपों में हम यहां विकसित पाते हैं।

मथुरा के 'ध्रुपद' प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि 'ध्रुवा' नामक गीत से ध्रुपद का आविष्कार हुआ। सोलहवीं शती से ध्रुपद की शास्त्रीय गायनशैली का ब्रज में विशेष प्रचार मिलता है। ये गीत वीणा, पखावज, तंबूरा आदि के साथ गाए जाते हैं। यह गायनपद्धति कव्वाली, ठुमरी आदि विदेशी गीतशैलियों से भिन्न है, और उनसे कहीं अधिक सरस तथा गंभीर है। अष्टछाप कवियों के समय ब्रज में संगीत की मधुर धारा प्रवाहित हुई। सूरदास, नंददास, गोविंदस्वामी, कृष्णदास आदि स्वयं गायक थे। उन्होंने विविध गीतों का अगाध भंडार अपनी रचनाओं में भर दिया। ब्रज में स्वामी हरिदास जी संगीतशास्त्र के प्रकांड आचार्य तथा गायक हुए। तानसेन जैसे उद्भट संगीतज्ञ भी उनके शिष्य माने जाते हैं। मथुरा, वृंदावन, गोकुल तथा गोवर्धन बहुत काल तक संगीत के केंद्र रहे, जहां दूर दूर से संगीतज्ञ तथा कलाप्रेमी आते रहे। प्रसिद्ध है कि सम्राट अकबर भी हरिदास स्वामी के मधुर गीतों को सुनने का लोभ संवरण न कर सके और वृंदावन आए।

रास : रास ब्रज की अनोखी वस्तु है। इसका वर्तमान रूप कब से प्रारंभ हुआ, इस बारे में कई मत हैं। निंबार्क संप्रदाय के धमडदेव को कुछ लोग रास का प्रारंभकर्ता मानते हैं। दूसरे मतानुसार गौड़ीय संप्रदाय के नारायण भट्ट को यह श्रेय दिया जाता है। नारायण भट्ट अनेक ग्रंथों के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने ब्रज यात्रा का भी प्रचार किया। 'रास' के प्रारंभ और प्रचार में उनका महत्वपूर्ण योग प्रतीत होता है। संभव है कि धमंडदेव भी रासलीला के प्रारंभकर्ताओं में से रहे हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्तमान समय में रास के दो मुख्य रूप मिलते हैं : एक शास्त्रीय और दूसरा विविध लोकनृत्यों, संवादों आदि पर आधारित रूप। पिछले पर आधुनिक नाट्य का प्रभाव स्पष्ट है। रास की अधिकांश लीलाएं 'भागवत पुराण' तथा वैष्णव भक्तों की रचनाओं पर आधारित हैं। इन लीलाओं में अष्टछाप के कवियों, हरिराम व्यास, स्वामी हरिदास तथा परवर्ती भक्त कवियों के पदों का गायन होता है। 'रास' के नृत्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें कृष्ण और सखियों के अलग अलग नृत्यों के अतिरिक्त विविध प्रकार के मंडल नृत्य भी होते हैं। महारास तथा लकुट रास के नृत्य विशेष उल्लेखनीय हैं। 'रास' में संगीत के तीनों अंगों -- गीत, वाद्य तथा नृत्य का समन्वय मिलता है। ब्रज की संस्कृति को रास के द्वारा बड़ी चारुता के साथ व्यक्त किया जाता है। रास के कथनोपकथन, वाद्यों के साथ चलने वाले गीत तथा भावात्मक नृत्य भारतीय संगीत में विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मथुरा की तान तथा खयाल-लावनी भी बहुत प्रसिद्ध है। खयाल-लावनी के गायकों के अनेक वर्ग हैं। ब्रज की भगत, जिसे 'स्वांग' कहते हैं, यहां बहुत प्रचलित है। मथुरा इसका मुख्य केंद्र माना जाता है। लोकगीतों की तरह ब्रज में चरकला, चांचर, ढ़ांड़ा-ढ़ांड़ी आदि विविध रोचक लोकनृत्य प्रचलित हैं।

ब्रज में वाद्ययंत्रों के भी अनेक रूप मिलते हैं। बहुत से वाद्यों की चर्चा ब्रजभाषा के भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में की है। ब्रज की प्राचीन कला में भी अनेक प्रकार के वाद्ययंत्र मिले हैं। होली आदि त्योहारों के अवसर पर यहां के अनेक वाद्ययंत्र देखने को मिलते हैं।

ई० 19वीं शती में मथुरा में कई बड़े संगीतज्ञ हुए। गणेशीलाल चौबे उत्तर भारत की शुद्ध गायकी में अपने समय में बहुत प्रसिद्ध थे। कहा जाता है कि संगीत शास्त्री विष्णु दिगंबर ने उनसे बहुत बातें सीखीं। नेपाल, ग्वालियर आदि के शासकों ने चौबेजी की गायकी पर मुग्ध होकर उन्हें सम्मानित किया। विष्णु दिगंबर के अतिरिक्त ग्वालियर के भइया साहब, माधवजी आदि इनके शिष्य थे। गणेशीलाल के बाद मथुरा में प्रसिद्ध गायक चंदन चौबे हुए। वे ध्रुपद, धमार तथा कीर्तन साहित्य के अन्य अंगों के बहुत बड़े जानकार थे। ध्रुपद गायकी के वे महान कलाकार थे।

वाद्यसंगीत के जानकारों में वंशीधर, छोटे लाला, बड़े लाला, लालन चौबे, अयोध्यानाथ, औघड़ चौबे और चतुरा पखावजी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वंशीधर सारंगी बजाने में विख्यात थे। गणेश चौबे (उपनाम छैया) तबला बजाने में कुशल थे।

प्राचीन मथुरा में संगीत गुणग्राहक भी बहुत थे। इनमें सेठ लछमनदास जी, गोपाललाल महाराज, राधाकृष्ण जी चूड़ीवाले तथा बाबू जगन्नाथ सरीन के नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिरस्मरणीय रहेंगे। इन महानुभावों ने इस कला के प्रवर्धन में बड़ा योग दिया।

संगीत तथा नाट्य की प्राचीन परंपरा मथुरा तथा ब्रज के अन्य स्थलों में जीवित है। लोकगीतों तथा लोकनाट्य के विविध आकर्षक रूपों से ब्रज का नाम भी भारत में प्रसिद्ध है।

संदर्भ

1. संख्या 3 से 6 तक की मूर्तियां कुषाणकाल की हैं.
2. सं० 8 से 13 तक की सभी मूर्तियां कुषाणकालीन हैं.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

15
भाषा और साहित्य

मथुरा से जो पुराने शिलालेख मिले हैं उनमें से अधिकांश की भाषा प्राकृत या संस्कृत मिश्रित प्राकृत है। शुद्ध संस्कृत का सबसे प्राचीन लेख राजा षोडास के समय का मिला है, जो ई० पूर्व प्रथम शती का है। यह लेख पद्य में है। शक-क्षत्रप शासक संस्कृत तथा प्राकृत दोनों के आश्रयदाता थे। कुषाणों के समय में प्राकृत का प्रचार बढ़ा। तदनंतर गुप्तसम्राटों के काल में संस्कृत की उन्नति हुई और वह अब राष्ट्र-भाषा बनी। मथुरा प्रदेश में जो प्राकृत प्रचलित हुई वह 'शौरसेनी प्राकृत' कहलाई। अपनी कोमलता एवं सरसता के कारण वह बहुत समय तक उत्तर भारत की प्रमुख भाषा बनी रही। इसी से शौरसेनी अपभ्रंश बनी, जो चौदहवीं शती में ब्रजभाषा के रूप में विकसित हुई। ब्रजभाषा की व्यापकता धीरे धीरे शौरसेनी प्राकृत की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई और उसे लगभग चार सौ वर्षों तक भारत के एक बड़े भाग की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्राप्त रहा।

यद्यपि ब्रजभाषा की प्रारंभिक रचनाएं ई० चौदहवीं शती के मध्य से मिलने लगती हैं पर उसका विकसित साहित्यिक रूप भक्तिकालीन अष्टछाप की कविताओं में प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण के सगुण रूप को लेकर उनकी मधुर लीलाओं पर भक्तकवियों ने कितनी ही सुंदर रचनाएं कीं। अष्टछाप के आठ महानुभाव कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चर्तुभुजदास हैं। इनमें छीतस्वामी को छोड़कर अन्य सबका जन्म मथुरा नगर के बाहर हुआ था। पर ये आठों सखा' ब्रज में बहुत दिनों तक रहे। गोवर्धन इनका प्रधान केंद्र था। इनमें से तीन कवियों के पद नीचे दिए जा रहे हैं। ये इस बात के द्योतक हैं कि इन महान साहित्यकारों के हाथों निखरकर ब्रजभाषा का रूप कितना सुंदर हो गया।

सूरदास

खंजन नैन रूप-रस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥
चलि चलि जात निकट स्रवननि के, उलटि-पलटि तांटक फँदाते।
'सूरदास' अंजन-गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैया मोरी मैं नहिं माखन खायौ।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायौ।
चारि पहर बंसीबट भटक्यौ, सांझ परे घर आयौ॥
मैं बालक बहियन कौ छोटो, छींको किहि बिधि पायौ।
ग्वालबाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायौ॥
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायौ।
जिय तेरे कछु भेद उपजिहै, जानि परायौ जायौ॥
यह लै अपनी लुकुट-कमरिया, बहुतहि नाँच नचायौ।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा, लै उर कंठ लगायौ॥

ऊधौ, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं॥
वे सुरभी, वे बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल, नाँचत गहि गहि बाहीं॥
ये मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवत वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदा-नंद निबाहीं।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं॥

परमानंददास

ब्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन हारे॥
मात जसोदा पंथ निहारत, निरखत साँझ सकारे।
जो कोउ 'कान्ह-कान्ह' कहि बोलत, अँखियन बहत पनारे॥
ये मथुरा काजर की रेखा, जे निकसे ते कारे।
'परमानंद' स्वामि बिन ऐसे, जैसे चंदा बिनु तारे॥

छीत स्वामी

मथुरा के चतुर्वेदी परिवार में इनका जन्म सं० 1572 (1515 ई०) में हुआ। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिला। विठ्ठल जी तथा यमुना जी स्तुतिरूप में इन्होंने पद लिखे हैं। कुल पदों की संख्या 400 से ऊपर है। दो पद नीचे दिए जाते हैं :

मेरी अँखियन के भूषन गिरिधारी।
बलि-बलि जाउँ छबीली छबि पर, अति आनंद सुखकारी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परम उदार, चतुर चिंतामनि, दरस-परस दुखहारी।
अतुल सुभाव तनक तुलसी दल, मानत सेवा भारी॥
'छीतस्वामि' गिरिधरन बिसद जस, गावत हैं कुलनारी।
कहा बरन गुन-गाय नाथ के, बिठ्ठल हृदय बिहारी॥

दोऊ कूल खंब तरंग सिढ़ी मानों जमुना जू जगत बैकुंठ निसैनी।
अति अनुकूल कलोलन के भार लिएँ जात हरि के चरनन सुख दैनी॥
जनम-जनम के दुकृत दूरि करनी काटत करम-धरम धार पैंनी।
'छीतस्वामि' गिरधर जू की प्यारी साँवरे अंग कमल दल नैनी॥

ई० सत्रहवीं शती के मध्य से ब्रजभाषा साहित्य के रीतियुग का आरंभ हुआ और वह लगभग पूरी दो शताब्दियों तक बना रहा। इस काल के कवियों की रचनाएं शृंगारप्रधान मिलती हैं। कविता अब मुख्यतया राजाश्रित हो गई। एक संकुचित सीमा में बंध जाने के कारण उसमें उक्त भाव न व्यक्त किए जा सके जो भक्ति-कालीन कविता के प्राण थे। अब कवियों का रुझान कल्पना, चमत्कार तथा शब्दजाल की ओर अधिक हो गया। कुछ लोग राधाकृष्ण की आड़ में शृंगार-सीमाओं का अतिक्रमण करने लगे। रीतिकालीन साहित्य तत्कालीन एक वर्ग की उत्तान शृंगारिक मनोवृत्ति का परिचायक है। तो भी उसमें नीति, भक्ति, स्वस्थ शृंगार, शांत एवं वीररस की उत्कृष्ट रचनाओं का नितांत प्रभाव नहीं है।

मथुरा नगर में इस काल में अनेक कवि और कलाकार हुए। उनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

कृष्ण कवि : इनका कविता काल 1730 ई० के लगभग है। इन्होंने 'बिहारी सतसई' पर टीका लिखी। सतसई के दोहों का भाव बड़ी सुंदरता से सवैयों में व्यक्त किया गया है। उदाहरण :

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल॥

बिहारी के इस दोहे पर सवैया है :

छबि सों फबि सीस किरीट बन्यो, रुचिसाल हिए बनमाल लसै।
कर कंजहि मंजु रली मुरली, कछनी कटि चारु प्रभा बरसै॥
'कवि कृष्ण' कहै लखि सुंदर मूरति, यों अभिलाष हिए सरसै।
वह नंदकिसोर बिहारी सदा, यहि बाकिन मों हिए मांझ बसै॥

सूदन : यह मथुरा के चौबे थे और भरतपुर के राजा सूरजमल (उपनाम सुजान-सिंह) के यहां रहते थे। उनके चरित्र का वर्णन इन्होंने 'सुजान चरित्र' नामक बड़े काव्यग्रंथ में किया है। यह ग्रंथ सात 'अंगों' (अध्यायों) में है और इसमें 1745 से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1753 ई० तक की राजनीतिक हलचलों का वर्णन है। अत: 1753 ई० के बाद ही इसकी रचना पूरी हुई होगी। सूदन वीर रस के कवि थे। इनकी कविता ओजपूर्ण है :

कोप्यौ मानों काल सौ बदन महिपाल पूत,
दीठि बाँकी करिकैं निहारैं ओर तू जाकी।
तू ही अवतार भुव भार के उतारन कों,
सार कै सम्हार नहिं ताव नर दूजा की॥
'सूदन' समत्थ अरि रूपन कौ पत्थ सम,
कीरति अकत्थ रतनाकर लौं भूजा की।
दिल्ली दल दट्टन सुकट्टन मलेच्छ बंस,
देस-देस जाहिर प्रचंड तेग सूजा की॥

परंतु कभी कभी सूदन इतने घरौटे में लिख मारते थे कि उनकी लेखनी से प्रसूत शब्द भी संग्राम करते से प्रतीत होते थे।

ग्वाल : इनका कविताकाल 1822 से 1861 ई० तक माना गया है। इन्होंने भारत में बहुत भ्रमण किया और अनेक प्रांतीय बोलियों का ज्ञान प्राप्त किया। इनकी रचनाएं 'यमुना-लहरी,' 'रसिकानंद,' 'रसरंग,' 'गोपी-पच्चीसी,' 'कुब्जा-अष्टक,' 'भक्तभावन' आदि हैं। इनकी बहुत सी कविताओं का संग्रह 'कवि-हृदय बिनोद' है। दो रचनाएं यहां प्रस्तुत है :

शरद वर्णन

मोरन के सोरन की नेकौ न मरोर रही,
घोर हू रही न घन घने या फरद की।
अंबर अमल, सर सरिता विमल भल,
पंक को न अंक औ न उड़न गरद की॥
'ग्वाल कवि' चित्त में चकोरन के चैन भये,
पंथिन की दूर भई दूषन दरद की।
जल पर, थल पर, महल अचल पर,
चांदी-सी चमकि रही चाँदनी सरद की॥

पुत्रों को शिक्षा

चाहिये जरूरी इंसानियत मानुस को,
नौबत बजे पै फेरि मोरि बजिबौ कहा।
जात औ कुजात, हिंदू और मुसलमान क्या,
जासौं कियौ नेह फेरि वाकों तजिबौ कहा॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'ग्वाल कवि' जाके लिये सीस पै बुराई लई,
लाज हू लजाई फेरि लाज लजिबौ कहा
कै तो रंग काहू के न रँगिये सुजान प्यारे,
रँगे तौ, रँगेई रहौ, फेरि तजिबौ कहा ।।

नवनीत चतुर्वेदी : नवनीत चतुर्वेदी रीतिकाल में नहीं हुए पर वे ब्रजभाषासाहित्य की रीतिकालीन काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। बीसवीं शती की मथुरा के वे एक महान कवि माने जाते हैं। इन्होंने 'श्यामांगावयवभूषण,' 'गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह', 'कुब्जापच्चीसी,' 'मूर्खशतक' आदि कई ग्रंथों की रचना की। इनके फुटकर छंदों की संख्या भी बहुत अधिक है। नीचे इनकी सरस कविता का एक उदाहरण दिया जाता है :

भूलि जिन जैयो ब्रजराज, बरसाने कहूँ,
गोरिन के गोल ते किसोरी जो निहारैंगी ।।
घोर रंगरोरिन ते केसर कमोरिन ते,
प्रीति झकझोरिन ते पकरि पछारैंगी ।।
याद करि सांकरी गली की लूट गोरस की,
सो रस की 'नीति' आजु कसर निकारैंगी ।।
मलि के गुलाल रस ख्याल में गुपाल गाल,
देखत ही लाल, तुम्हें लाल करि डारैंगी ।।

उपर्युक्त प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त मथुरा नगर में रीतिकालीन परिपाटी के कवियों में हरलाल माथुर ('रास-पंचाध्यायी' 'ब्रज परिक्रमा' आदि ग्रंथों के लेखक), सोमनाथ (अलंकारग्रंथ 'रस-पीयूष' के कर्ता), ओढ़दास (उपनाम दामोदर), खूबचन्द और खेमचन्द (ग्वाल कवि के लड़के), हीरालाल चौबे, रामचंद्र आदि थे। ग्वाल के शिष्य खड़ग, बेगुन मुसलमान, साधूराम अग्रवाल और किशोर अच्छे कवि थे। नवनीतजी के शिष्यों में किशनलाल 'पापड़वाले' ('गजेन्द्र मोक्ष' के लेखक, 'मेघदूत' के अनुवादक एवं शतरंज के नामी खिलाड़ी) और भोलाराम भंडारी प्रतिभाशाली कवि थे।

मथुरा नगर में 18वीं और 19वीं शती में कुछ ऐसे भी लेखक हुए जो रीतिकालीन परंपरा से स्वतंत्र थे और कवि होने के साथ कलाकार भी थे। 18वीं शती के कवि मनियांभट्ट नाट्य मे उस्ताद थे। 19वीं शती के कवि-कलाकार बाबू श्यामाचरन ('ऊषाचरित', 'रुक्मिणीहरण' आदि ग्रंथों के प्रणेता), बिरजूसिंह, कल्ला सिंह, चुन्नीलाल, बब्बेसिंह, वल्लभजी, विदुरजी, हरसुख उस्ताद, नरायनदास भगत, नत्थन जड़िया, नैनसुख, मानिकलाल, सुन्दरलाल वैश्य, कल्लन सुनार आदि थे। इन लोगों ने अनेक प्रकार के गेयपद, स्वांग और नाटक लिखे। इनमें आशुकवि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानिकलाल चौबे विख्यात कलाकार थे। उनका कहना था कि अन्य कवियों में तो एक या अधिक से अधिक दो गुण ही होते हैं, पर उनमें कविता, गाना और नाचना ये तीनों कलाएं थीं :

ये तेते सब कवि भये एक-एक गुनहीन।
कथनो, गानो, नाचनो मानिक में गुन तीन।।

ज्योतिष : मथुरा नगर ज्योतिष का भी केंद्र रहा है। परंतु इस संबंध में 18वीं शती से पूर्व का इतिहास उपलब्ध नहीं है। राजा मानसिंह ने 16वीं शती में मथुरा में यमुनातट पर किला बनवाया। उसमें जयपुर के विद्वान एवं यशस्वी शासक सवाई जयसिंह ने एक वेधशाला की स्थापना 1725 ई० के लगभग की। जयसिंह ने मथुरा के अतिरिक्त दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और बनारस में भी वेधशालाओं का निर्माण कराया। इनमें अनेक प्रकार के यंत्र रखे गए। कुछ यंत्र नए ढंग पर प्रस्तुत किए गए थे। जयसिंह स्वयं अच्छे ज्योतिर्विद् थे। उन्होंने एक बार यूरोप से आए हुए गणित-ज्योतिषसंबंधी नक्शों की जांच कर उन्हें गलत सिद्ध कर दिया था। खेद है कि मथुरा किले पर निर्मित उनकी वेधशाला नष्ट कर दी गई है और अब उसका कोई भी चिह्न शेष नहीं रह गया है।

मथुरा में ज्योतिषकला के परवर्ती विकास का प्रधान श्रेय यहां के 'ज्योतिष बाबा' परिवार को है। सबसे पहले इस परिवार में कृपाशंकर (1744-94 ई०) प्रसिद्ध पंडित हुए। वे तुकोजीराव होल्कर के प्रधान ज्योतिषी थे। होल्कर ने उन्हें 'ज्योतिषी बाबा' की उपाधि दी और उनके पांडित्य से प्रभावित होकर उन्हें कई गांव दिए। उनके पुत्र गोविंदलाल थे। गोविंदलाल के पुत्र कुंजीलाल के तीन पौत्रों —माधवलाल, विभाकर लाल और शिवप्रकाश—में अंतिम सबसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने ज्योतिष पर कई ग्रंथ लिखे और अनेक प्रकार की घड़ियों तथा गोलार्ध, मर्कटी यंत्र, लग्न बोधक, यष्टि, खगोल आदि यंत्रों का निर्माण किया। इनमें से अधिकांश यंत्र अब भी सुरक्षित हैं और दर्शनीय हैं।

ज्योतिष के यंत्रनिर्माताओं में एक कल्ला मिस्त्री थे। ये मथुरा के धूसरपाढ़ा में रहते थे। इन्होंने सूर्य घड़ी, नक्षत्र घड़ी आदि कई प्रकार की घड़ियों और कुछ अन्य यंत्रों का निर्माण किया।

मथुरा के अन्य ज्योतिषियों में भगवाना पंडित, कुलकीजी, प्रभुदयाल तथा चन्द्रशेखर शास्त्री के नाम उल्लेखनीय हैं।

मल्लकला : मथुरा नगर मल्लविद्या के लिए बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। कहा जाता है कि यहां मल्लविद्या पर ग्रंथ लिखे गए। कंस के पहलवान चाणूर, मुष्टिक आदि अपने समय के प्रख्यात मल्ल थे। मथुरा का एक मुहल्ला अब भी 'मल्लपुरा' के नाम से प्रसिद्ध है। वहीं कंस के पहलवानों तथा उनके उत्तरा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिकारियों का निवास रहा होगा। मथुरा में मल्लकला की प्राचीन परंपरा को अब तक जारी रखने का प्रधान श्रेय यहां के चौबों को है। इनकी बगीचियां अब भी मल्लकला का केंद्र बनी हुई हैं। चौबों के अतिरिक्त जाटों और कुछ सनाढ्य ब्राह्मणों ने भी मथुरा में इस कला को उन्नत किया।

18वीं शती में मथुरा के दो पहलवान अलिदत्त और कुलिदत्त बहुत प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि ये अपने हाथ से नापकर सवा हाथ की रोटी खाते थे। महादजी सिंधिया और खांडेराव के यहां मथुरा के चुने हुए पहलवान रहते थे। 18वीं शती के अन्य प्रख्यात पहलवान धीरा, फकीरा, उद्धवसिंह, माखनसिंह, हौआ, हीरा, गुरु, मंगा गुरु, खंगूसिंह, भंवरजी, नत्थीजी, देविया, झबद और गदना थे। धीरा-फकीरा देविया और झबद के बारे में प्रसिद्ध है कि वे शेर से कुश्ती लड़े थे और उसे पछाड़ दिया था। माखनसिंह जी मल्लशास्त्र के पंडित भी थे और उन्होंने 'मल्लपुराण' की रचना की। 19वीं शती में मथुरा के उल्लेखनीय पहलवानों में दाऊ गुरु, पीनूजी, दंगी गुरु, लंगड़ पहलवान, तपियां, चूं चूं, खुशाला, महादेव जाली, नीता, छीतूसिंह, भोंदू, लोकटी, देवीदास, रतना, गोपीनाथ ओर विश्वम्भर थे। बीसवीं शती में उल्लेखनीय नाम धूजी, टेउवां, बलदेव पौर मधुसूदन के हैं।

प्राचीन मथुरा में उच्चकोटि के कितने ही सन्त-महात्मा रहे होंगे, परंतु उन सबके नाम ज्ञात नहीं हैं। नाभादासजी के समकालीन कीलजी नामक महात्मा का उल्लेख साहित्यिक ग्रंथों में मिलता है, जो मथुरा में रहते थे। उनके बाद यहां 'सम्राट' दीक्षितजी, बाबा किशनदासजी, ब्रह्मचारीजी (बंगाली घाट वाले), शीलचंद्रजी (जिन्होंने वर्तमान महाविद्या का मंदिर ठीक कराया) और विरजानंद जी ऊंचे संत हुए।

विरजानंदजी दंडी घाट पर रहते थे। इनके गंगदत्त, रंगदत्त आदि आठ प्रधान शिष्य थे। स्वामी दयानंद सरस्वती ने बहुत दिन तक विरजानंदजी से शिक्षा प्राप्त की। दयानंदजी मथुरा में 15-16 वर्ष तक रहे बताए जाते हैं। वह पहले विश्राम घाट पर रहते थे और ज्योतिषी बाबा के यहां भोजन करते थे, फिर सतघड़ा मुहल्ला में रहने लेगे थे। विरजानंदजी के बाद मथुरा में नरहरी बाबा, मोतीदत्तजी, नंदनजी, वनमालीजी और मुकुंदरामजी प्रसिद्ध संत हुए। वनमालीजी को समस्त महाभारत कंठस्थ थी।

19वीं शती में मथुरा में योगतंत्र के दो महान ज्ञाता वासुदेव महाराज और रज्जू योगिराज हुए। ये अनेक प्रकार की तांत्रिक क्रियाएं जानते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

16
धर्म और दर्शन

मथुरा में श्रीकृष्ण के आविर्भाव से एक नए युग का प्रवर्तन हुआ। उन्होंने अपने समय में प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं में समन्वय स्थापित कर निष्काम कर्म का महत्व प्रतिपादित किया। उनका तथाकथित गीता उपदेश भारतीय चिंतन का शीर्ष बिंदु है, जिसमें प्रमुख विचारधाराओं की व्याख्या के साथ व्यावहारिक जीवन दर्शन का विवेचन मिलता है। जिस रूप में वर्तमान गीता उपलब्ध है वह श्रीकृष्ण के बहुत बाद की रचना है। परंतु इसका मूल वही है जिसे श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में संक्षेप में बताया होगा और जिसे उन्होंने अपने जीवन में व्यवहृत भी किया। श्रीकृष्ण भागवत धर्म के प्रवर्तक हुए। कर्मपरक सात्विक भक्ति को अवलंब बनाकर भागवतधर्म ने कोटि कोटि जन को कल्याणमय जीवन का मार्ग बताया। कालांतर में भारत का यह एक प्रमुख धर्म बना, जिसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएं पल्लवित-पुष्पित हुईं।

बुद्ध के पूर्व की स्थिति

गौतमबुद्ध के पूर्व शूरसेन तथा उसके समीपवर्ती प्रमुख जनपदों में वैदिक कर्मकांड का प्राधान्य था। यज्ञों के अनेक रूप प्रचलित थे। ब्राह्मणों का पद ऊंचा माना जाता था और प्राय. वे ही यज्ञ कराने के अधिकारी होते थे। पुरोहितों को यज्ञ-कर्ताओं से प्रभूत दक्षिणा प्राप्त होती थी। परवर्ती वैदिक साहित्य में इस संबंध में प्रचुर उल्लेख प्राप्त हैं।

प्राचीन बौद्धसाहित्य से उत्तर भारत में महात्मा बुद्ध के पहले की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। इस साहित्य से पता चलता है कि यज्ञों तथा नागों की भी पूजा प्रचलित थी। यज्ञों के अनेक बड़े केंद्र मथुरा, आलवी आदि स्थानों में थे। ये यक्ष महान शक्तिशाली तथा धन के अधिपति माने जाते थे। यक्षों तथा यक्षियों की पूजा में लोगों का विश्वास बढ़ चला था। उनके अनेक रूपों की कल्पना की गई थी। पराक्रमी यक्षों के प्रति लोगों में भयजनित श्रद्धा उत्पन्न हुई। यक्षियों की साधना प्रायः उनके कल्याणप्रद, सुंदर-मोहक रूप में की जाती थी। उनका दूसरा रूप भयावना होता था।

'महाभारत' में यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न पूछने की बात प्रसिद्ध इस 'यक्ष-प्रश्न' की वैदिक संज्ञा 'ब्रह्मोद्य' थी। उत्तर भारत में यक्षपूजा का बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक प्रचार हो गया था। इसका विशेष पता हमें बौद्ध और जैन साहित्य से चलता है, जिसमें उवरदत्त, सुरंवर, मणिभद्र, भंडीर, शूलपाणि, सुरप्रिय, घंटिक, पूर्णभद्र आदि शक्तिशाली यज्ञों के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार कुंती, नटा, भट्टा, रेवती, तमसुरी, लोका, मेखला, आलिका वेन्दा, मघा, तिमिसिका आदि अनेक यक्षियों के नाम भी प्राप्त हैं। इनसे लोग बहुत भय खाते थे। अंतिम चारों यक्षियों मथुरा की थीं। बुद्ध ने उन्हें दुष्प्रवृत्तियों से निवृत्त किया। मथुरा में गर्दभ नामक यक्ष बड़ा शक्तिशाली था। उसका दमन कर बुद्ध ने मथुरा के निवासियों का कष्ट दूर किया। उसी प्रकार आलवी का दुर्दांत यक्ष भी बुद्ध द्वारा विनम्र बनाया गया।

नागों की पूजा भी मथुरा और उसके आस-पास प्रचलित थी। वे जल के देवता तथा शक्ति एवं समृद्धि के प्रतिनिधि माने जाते थे। संतान की इच्छा वाली स्त्रियां विशेष रूप से उनकी पूजा करती थीं।[1]

अनेक लौकिक मान्यताओं तथा अंधविश्वासों का भी पता चलता है। इनमें से कुछ इस प्रकार थे : हस्त-ज्योतिष, दैवकथन, दैवी घटनाओं से फलों का कथन, स्वप्नफल, मूषकों द्वारा काटे हुए कपड़े का फलकथन, अग्निबलि, विभिन्न प्रकार के देवों को बलि-प्रदान, भाग्यप्रद, स्थानों का अभिज्ञान, मंत्र-तंत्र, प्रेत-विद्या, सर्प तथा विविध पशु-पक्षियों का वशीकरण, फलित ज्योतिष, विविध प्रकार की भविष्यवाणियां, किसी लड़की में देव को बुलाकर या दर्पण की सहायता से रहस्य का उद्घाटन, गुप्त धन खोजने की विद्या, सर्वशक्तिमान की उपासना, 'सिरि' या लक्ष्मीदेवी का आह्वान, देवों की आन या सौगंध, वशीकरण और इंद्रजाल की विद्याएं।[2]

इस प्रकार लोक में अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण क्रियाओं एवं तंत्र-मंत्रों में अंध श्रद्धा विद्यमान थी। अग्नि, इंद्र आदि वैदिक देवताओं की पूजा भी प्रचलित थी। उसके साथ मातृदेवियों, वृक्षदेवताओं, यक्षों, नागों तथा असुरों की पूजा भी होती थी। इन लौकिक देवी-देवताओं में कुछ तो दयालु थे और कुछ कठोर और क्रोधी। कई देवता वायु, मेघ, गरमी, प्रकाश आदि के प्रतीक माने जाते थे और कुछ मानसिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे।

अनेक मत-मतांतर फूल-फल रहे थे। बुद्ध के पहले धार्मिक मान्यताओं के संबंध में लोगों को विचार-स्वातंत्र्य प्राप्त था। कुछ आधुनिक विद्वानों का यह विचार कि बुद्ध के पूर्व भारतीय समाज ब्राह्मणों द्वारा पैदा की गई धार्मिक रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था, युक्तिसंगत नहीं है। वास्तव में इस काल के लोग धार्मिक विषयों में प्रायः स्वतंत्र थे, जिसके फलस्वरूप चिंतन की कितनी ही धाराएं एवं संप्रदाय अस्तित्व में आ गए थे। पालि साहित्य के अनुसार उत्तर भारत में बुद्ध के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मप्रचार के पूर्व 62 संप्रदाय विद्यमान थे। ये आजीवक, परिव्राजक, जटिलक, मुंडश्रावक, तेदंडिक आदि थे। जैन ग्रंथों में इन संप्रदायों की संख्या 363 दी हुई है। धीरे धीरे इनमें से कितने ही वैदिक धर्म में या जैन एवं बौद्ध धर्मों में समा गए। बुद्ध के समय में विभिन्न धर्मों के अनेक विद्वान प्रचारक मौजूद थे। इनमें पुराण कस्सप, मक्खलि गोषाल, निगंठ नाटपुत्त, अजित केशकंबलिन्, असित ऋषि, पकुद्ध कच्चायन, मोग्गलान, संजय वेलट्ठपुत्त, आड़ार कालाम, उद्दक रामपुत्त आदि विद्वानों के नाम मिलते हैं। इनमें से अनेक अपने मतों के आचार्य थे। महात्मा बुद्ध द्वारा उनसे मिलने तथा उनकी दार्शनिक मान्यताओं के संबंध में विचार-विमर्श करने के उल्लेख बौद्धसाहित्य में प्राप्त हैं।

परवर्ती धार्मिक इतिहास

महात्मा बुद्ध का समय (ई० पू० 623-543) उत्तर भारत के धार्मिक इतिहास में उल्लेखनीय है। उनके समय में हुए धार्मिक आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। स्वयं बुद्ध और उनके समकालीन अंतिम जैन तीर्थंकर महावीर इस आंदोलन के प्रमुख कर्णधार थे। धीरे धीरे मथुरा नगर बौद्ध एवं जैन धर्मों का केंद्र बना और एक दीर्घ काल तक यहां इन दोनों मतों का विकास होता रहा। भागवतमत ने मथुरा और उसके आस-पास के प्रदेश में पहले से ही व्यापकता प्राप्त कर ली थी।

बौद्ध धर्म : बुद्ध के समकालीन मथुरा के शासक अवंतिपुत्र का उल्लेख बौद्ध साहित्य में मिलता है। उसे अवंती राज्य के प्रतापी शासक चंड प्रद्योत का दौहित्र कहा गया है। 'मज्झिम निकाय' आदि बौद्ध ग्रंथों में अवंतिपुत्र द्वारा बौद्ध धर्म को अंगीकार करने का उल्लेख मिलता है।[3] मूल सर्वास्तिवाद के 'विनयपिटक', 'अशोकावदान' के चीनी संस्करण तथा 'दिव्यावदान' आदि ग्रंथों में बुद्ध के मथुरा आगमन, उनके द्वारा यक्षों के दमन तथा सद्धर्म प्रचार का संकेत है।

इन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि मथुरा में बुद्ध के आगमन समय में यक्षों का बड़ा जोर था और लोग उनसे घबड़ाते थे। बुद्ध ने बड़ी सावधानी के साथ यहां के दुर्दांत यक्षों और यक्षियों का दमन कर लोगों का भय दूर किया। इनमें सबसे प्रबल 500 परिवारवाला गर्दभ या गर्दभक यक्ष था, जो छोटे बच्चों को मारकर खा जाता था और जिससे मथुरावासी बहुत त्रस्त थे। उक्त बौद्ध साहित्य के अनुसार महात्मा बुद्ध ने सबके सामने गर्दभ यक्ष से बात की और उसे विनीत बनाया। उन्होंने शर तथा वन नामक अन्य यक्षों तथा आलिका, बेंदा, मघा, तिमिसिका आदि यक्षियों को भी सन्मार्ग पर प्रवृत्त किया। इन यक्षियों में तिमिसिका 500 परिवार वाली थी। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार मथुरा नगर और उसके बाहर कुल मिलाकर 3,500 यक्ष भगवान बुद्ध द्वारा सद्धर्म में प्रवृत्त किए गए। इन यक्षों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए मथुरा के नागरिकों ने नगर के बाहर मकान बना दिए।[4]

शूरसेन जनपद में बुद्ध का विरोधी मुख्यतः ब्राह्मणवर्ग था। बौद्ध ग्रंथों में आया है कि मथुरा में बुद्ध के आने पर यहां के ब्राह्मणों ने, जिनका नेता नीलभूति था, उन्हें अपमानित करना चाहा। परंतु बुद्ध के शील और सौजन्य ने उन पर विजय पाई और नीलभूति आदि कितने ही ब्राह्मण उनके प्रति श्रद्धानत हो गए। मथुरा में जिन दोषों का अनुभव तथागत ने किया, वे ये थे : यहां के लोगों में ऊंच-नीच का भाव था, यहां की भूमि ऊबड़-खाबड़ और कंटीली थी, स्त्रियों का आधिक्य था तथा अधिकांश लोग रात्रि के अंतिम प्रहर में भोजन करते थे।

मथुरा से बुद्ध ओतला होते हुए वैरंभ[5] पहुंचे, जहां उन्होंने अपने पांच सौ अनुयायियों के साथ वर्षाकाल व्यतीत किया। इस समय वहां अकाल के कारण सबको नितांत कष्ट हुआ। वहां से वे समीपवर्ती जनपद पंचाल में गए।

पालि साहित्य में मथुरा में बुद्ध के आने का उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि उसमें वेरंज (वैरंभ) तक जाने का कथन उपलब्ध है। संभवतः सर्वास्तिवादियों ने अपनी प्राचीनता दिखाने के उद्देश्य से बुद्ध के मथुरा जाने तथा उनके द्वारा उपगुप्त के संबंध में भविष्यवाणी आदि करने की चर्चा जान-बूझ कर नहीं की।

मथुरा में बुद्ध के आगमन से तथा महाकात्यायन जैसे उनके कर्मठ अनुयायियों के प्रचारकार्य से शूरसेन जनपद में बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ा। यहां के पुराने रूढ़िवादी ब्राह्मणों का एक वर्ग भी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धालु हो गया।

बुद्ध की मृत्यु के एक शती पश्चात बौद्ध संघ दो भागों में बंट गया : (1) थेर (स्थविर)-वाद, (2) महासंघिक। थेरवाद प्राचीन परंपरा वाला या रूढ़िवादी हुआ और दूसरा प्रगतिशील। दूसरे की बाद में 'महायान' संज्ञा प्रसिद्ध हुई। मथुरा में या उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों में महायान का विस्तार नहीं के बराबर हुआ। इसके प्राचीन केंद्र दक्षिण में आंध्र देश में थे। कालांतर में गंधार, कश्मीर और मध्य एशिया में उसके केंद्र स्थापित हुए।

उत्तर प्रदेश में रूढ़िगत थेरवाद से किंचित भिन्न सर्वास्तिवाद (संस्कृत हीनयान) का विकास हुआ। महायान के दार्शनिकों—नागार्जुन, असंग, वसुबंधु आदि—ने इसका उल्लेख शून्यवाद, आदर्शवाद विज्ञप्ति (मातृका) वाद आदि नामों से कर उसकी खिल्ली उड़ाई।

मथुरा को सर्वास्तिवादियों ने अपना मुख्य केंद्र बनाया। यहां से वे गंधार, कश्मीर और फिर मध्य एशिया तथा चीन में फैले। मथुरा में इनके जमने की कथा मिलती है। सिंहली बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि सम्राट अशोक अपने भतीजे निग्रोध सामणेर के द्वारा दीक्षित किया गया। अशोक ने भारत में कुल 84,000 स्तूप बनवाए। पाटलिपुत्र में उसने अशोकाराम बनवाया। अन्य स्थानों की भांति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाटलिपुत्र में थेरवादियों और महायानियों में झगड़े पैदा हो गए। अशोक ने बौद्ध धर्म की एक संगीति बुलाई, जिसमें थेरवादी ही उपस्थित हुए। उनके विरोधी पाटलिपुत्र से बाहर चले गए। हुएन-सांग ने लिखा है :

> पाटलिपुत्र में 500 अर्हत और 500 अनर्हत थे। द्वितीय के अंतर्गत एक मथुरावासी महादेव भी था, जो बड़ा विद्वान और बुद्धिमान था। अशोक का संरक्षण उसे प्राप्त था। दूसरे विद्वान उससे सहमत न थे। वे लोग वस्तुस्थिति से पूर्णतया असंतुष्ट हो कश्मीर चले गए। अशोक को बाद में यह मालूम हुआ कि अच्छे विद्वान कश्मीर चले गए, क्योंकि उसने एक धूर्त भिक्षु का पक्ष लिया। उसने कश्मीर में अनेक विहार बनवाए।[6]

उक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि मथुरावासी महादेव प्रभावशाली व्यक्ति था। महावंश (अ० 12) के अनुसार मज्झांतिक अशोक के द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ गंधार और कश्मीर भेजा गया। इस मज्झांतिक (मध्यांतिक) को आनंद का शिष्य कहा गया है।

तिब्बती स्रोतों के अनुसार मध्यांतिक का बनारस में बड़ा जोर था। उसके बढ़ते हुए अनुयायियों को देखकर बनारस के लोग सशंकित हो गए और इस कार्य को अनुचित समझने लगे। इस पर मध्यांतिक अपने शिष्यों सहित बनारस छोड़कर मथुरा चला गया और उसके निकट उशीर पर्वत[7] पर रहने लगा।

'दिव्यावदान' में आया है कि महात्मा बुद्ध परनिर्वाण के कुछ पहले मथुरा गए। वहां उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनंद को बताया कि एक सौ वर्ष के पश्चात मथुरा में एक गंधी (इत्र बेचने वाला) पैदा होगा। उसका पुत्र उपगुप्त बुद्ध के समान कार्य संपन्न करेगा और उसके उपदेश से कितने ही भिक्षु अर्हत्पद को प्राप्त करेंगे।[8]

उक्त ग्रंथ से यह भी पता चलता है कि शाणकवासी नामक भिक्षु के उपदेश से उपगुप्त ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। यह शाणकवासी श्रावस्ती के जेतवन वाला सानवासिक ज्ञात होता है, जो सर्वास्तिवाद का बड़ा प्रभावशाली उपदेशक था। मथुरा निवासियों के आमंत्रण पर वह यहां आया और उसने उन यक्षों का उपद्रव बंद किया जो पुनः शक्तिशाली हो गए थे। 'दिव्यावदान' में मथुरा के रुरुमुंड पर्वत पर दो बौद्ध विहारों के निर्माण का भी उल्लेख है। पहले की स्थापना शाणकवासी द्वारा मथुरा के दो सेठ बंधुओं नट और भट द्वारा की गई। 'दिव्यावदान' में मथुरा की एक महार्घ गणिका वासवदत्ता और उपगुप्त के प्रति उसके प्रेम की भी रोचक कथा मिलती है। उपगुप्त गणिका के भौतिक प्रेम को ठुकराता रहा। एक बार मथुरा के राजा ने रुष्ट होकर वासवदत्ता के नाक-कान कटवाकर उसे श्मशान पर छुड़वा दिया। तब उपगुप्त वासवदत्ता से मिला और उसे उसने सद्धर्म का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपदेश दिया। ज्ञानप्राप्ति के बाद उसे अपना पूर्व रूप और स्वास्थ्य प्राप्त हुआ और अब वह धार्मिक जीवन बिताने लगी।

बौद्ध धर्म के प्रचारकों में उपगुप्त का स्थान बहुत ऊंचा है। मौर्यसम्राट अशोक को प्रभावित करने में उपगुप्त का निस्संदेह बड़ा हाथ रहा। अशोक की इच्छा थी कि वह बुद्ध से चरणों से पवित्र स्थानों पर स्तूप तथा अन्य स्मारक बनवाए। इस संबंध में वह उपगुप्त का परामर्श चाहता था। उपगुप्त गंगामार्ग से पाटलिपुत्र गए और वहां अशोक से मिले। उन्होंने सम्राट को उन सब स्थानों का विवरण बताया जो भगवान बुद्ध और उनके प्रधान शिष्यों की मुख्य जीवन-घटनाओं से संबंधित थे। अनेक स्थानों पर उपगुप्त स्वयं सम्राट के साथ गए। उनके सुझाव के अनुसार अशोक ने सभी स्थानों पर स्तूपादि स्मारकों का निर्माण कराया। मथुरा में भी यमुनातट पर विशाल स्तूप बनाए गए। इन स्तूपों का सातवीं शती में मथुरा आने वाले चीनी यात्री हुएन-सांग ने स्वयं देखा और अपने यात्रा विवरण में उनका उल्लेख किया।

उपगुप्त बहुत आयु तक जिया। अनेक लोगों को उसने दीक्षा देकर अर्हत्पद प्राप्त कराया। हुएन-साग ने उसकी कोठरी का, वर्णन किया है, जहां लकड़ी के टुकड़े भर गए थे।

तारानाथ के अनुसार उपगुप्त का उत्तराधिकारी धीतिक हुआ। यह उज्जैन के एक धनी ब्राह्मण का पुत्र था और बहुशास्त्रज्ञ था। वह 500 ब्राह्मण शिष्यों का गुरु था। मथुरा में आने पर वह उपगुप्त से मिला और उसका शिष्य हुआ। उसने मथुरा से कश्मीर और गंधार तक बौद्धमत का प्रचार किया। उस समय गंधार में यूनानी राजा मेनेंडर का शासन था। वह धीतिक को बहुत मानता था।

उपगुप्त ने कई ग्रंथों का प्रणयन किया और उसके शिष्यों ने भी अनेक ग्रंथ लिखे। सर्वास्तिवाद या वैभाषिक शाखा का उपमुक्त महान स्तंभ था। सर्वास्तिवाद का प्रधान केंद्र मथुरा हुआ। इसका मुख्य श्रेय शाणकवासी तथा उपगुप्त जैसे विद्वान एवं कर्मठ व्यक्तियों को दिया जा सकता है।

मौर्यशासन के बाद शुंगकाल में बौद्ध स्तूपों का निर्माण मथुरा में हुआ। इस काल के जो वेदिका स्तंभ तथा अन्य बौद्ध अवशेष मिले हैं उनसे इस बात की पुष्टि होती है। शक-क्षत्रपों के समय में मथुरा में यमुना किनारे उस स्थान पर जिसे सप्तर्षि टीला कहते हैं प्रसिद्ध 'गुहा विहार' तथा एक स्तूप का निर्माण महाक्षत्रप राजुवुल की पटरानी कमुइअ (कंबोजिका) द्वारा सर्वास्तिवादी बौद्धों के लिए कराया गया।[9] इस बात के भी प्रमाण है कि उसके पुत्र शोडास ने अपने राज्यकाल में उक्त विहार के लिए कुछ भूमि दान में दी। सप्तर्षि टीले से प्राप्त सिंहशीर्ष अभिलेखों से पता चला है कि उस समय महासंघिक लोग भी मथुरा में थे और उनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वास्तिवादियों में धार्मिक वादविवाद हुआ करते थे।

ईसवी प्रथम दो शताब्दियों में मथुरा पर कुषाण वंशी शासकों का आधिपत्य रहा। इनमें कनिष्क (78-101 ई०) सबसे अधिक प्रतापी हुआ। उसके समय में बौद्ध धर्म की बड़ी उन्नति हुई। मथुरा और उसके आस-पास अनेक बौद्ध स्तूपों, चत्यों तथा संघारामों का निर्माण कनिष्क ने कराया। मानुषी रूप में बुद्ध प्रतिमा का निर्माण इसी के राज्यकाल से आरंभ हुआ, जो धार्मिक इतिहास में एक महत्व-पूर्ण घटना है। धीरे धीरे मथुरा में बुद्ध, बोधिसत्व आदि की सैकड़ों मूर्तियों का निर्माण किया गया। ये प्रतिमाएं दूर दूर तक भेजी जाने लगीं। सर्वास्तिवादियों ने बाहर अपने प्रचार का माध्यम इन प्रतिमाओं को भी बनाया।[10]

बौद्ध धर्म के व्यापक प्रसार के लिए कनिष्क ने अथक प्रयत्न किए। उसने एक बड़ी सभा का आयोजन कश्मीर में किया, जिसका सभापति वसुमित्र तथा उप-सभापति अश्वघोष था। इस सभा में लगभग 500 विद्वान सम्मिलित हुए। सभा के प्रस्ताव के अनुसार तत्कालीन उपलब्ध बौद्ध साहित्य को ताम्रपत्रों पर खुदवा कर उन्हें एक स्तूप में रखा दिया गया। इस साहित्य में से त्रिपिटक का भाष्य 'महा-विभाषा' चीनी भाषा में उपलब्ध है।

कनिष्क ने अपने जो सिक्के जारी किए उनमें अन्य भारतीय देवों के साथ बुद्ध की मूर्ति भी मिलती है। कनिष्क के उत्तराधिकारियों ने भी बौद्ध धर्म की उन्नति में योग दिया। सम्राट हुविष्क (106-38 ई०) ने मथुरा में एक विशाल बौद्ध विहार की स्थापना की, जिसका नाम 'हुविष्क विहार' रखा गया। इसके तथा परवर्ती कुषाण 1 सकों के राज्यकाल में बौद्ध मूर्तियों का निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। अनेक मूर्तियां अभिलिखित मिली हैं, जिनसे सर्वास्तिवादियों के अतिरिक्त सम्मितीय, महासंधिक आदि बौद्ध मत की अन्य शाखाओं का भी मथुरा में अस्तित्व प्रमाणित होता है।

मथुरा में सर्वास्तिवाद का प्रारंभ ई० पू० 300 के लगभग ही हो गया था। उस समय से यहां इसका जोर बढ़ता गया। शक-क्षत्रप और कुषाणकाल के कतिपय अभिलेखों से ई० दूसरी शती तक मथुरा, श्रावस्ती और सारनाथ में सर्वास्तिवाद के अस्तित्व का पता चलता है। मथुरा इसका एक बड़ा केंद्र हो गया था। सप्तर्षि टीला से प्राप्त सिंहशीर्ष लेख से ज्ञात होता है कि सर्वास्तिवादी आचार्य बुद्धिल ने महासंघिकों को शास्त्रार्थ में पराजित कर बड़ा यश कमाया। सर्वास्तिवाद के अन्य आचार्य बुद्धदेव, बल, बुद्धमित्र आदि थे। मथुरा तथा उपर्युक्त अन्य दोनों स्थानों में ई० दूसरी शती तक सर्वास्तिवादियों का प्राधान्य रहा।

सर्वास्तिवाद की व्याख्या करते हुए बुद्धदेव ने लिखा है कि सापेक्ष सत्ता के रूप में (अन्यथान्यथात्व) सबका अस्तित्व है, इसीलिए इसका नाम 'सर्वास्तिवाद'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ा।[11] कात्यायनीपुत्र ने अपने 'ज्ञान-प्रस्थान-सूत्र' में लिखा है कि पदार्थों का अस्तित्व अतीत, वर्तमान एवं भविष्य—सभी कालों में रहता है। यही सर्वास्तिवाद का सिद्धांत है।[12]

थेरवादियों ने अपना त्रिपिटक पालि में लिखा था। सर्वास्तिवाद का संपूर्ण त्रिपिटक संस्कृत में लिखा गया। इसके पांच भाग थे : दीर्घागम, मध्यभागम, संयुक्तागम, एकरोत्तरागम और क्षुद्रकागम। त्रिपिटक का चीनी अनुवाद इन्हीं के आधार पर किया गया। पालि त्रिपिटक से इसमें बहुत अंतर है। संस्कृत त्रिपिटक के कुछ अंश ही इस समय उपलब्ध हैं।

मथुरा में सम्मितीय मत का आरंभ लगभग उसी समय हुआ जब कि सर्वास्तिवाद का। सम्मितीयों की तीन शाखाएं हुईं : कुरुकुलक, आवंतक तथा वात्सीपुत्रीय। इनमें से तीसरी शाखा अधिक प्रबल हुई। मथुरा से प्राप्त ई० दूसरी शती के एक लेख में धर्मक के शिष्य एक भिक्षु द्वारा बोधिसत्व की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने और उसे 'सिरि' विहार के सम्मितीय भिक्षुओं को समर्पित करने का उल्लेख मिलता है।

सम्मितीयों का मुख्य सिद्धांत 'पुद्गलवाद' है। यह एक प्रकार से बुद्ध के अनात्मसिद्धांत के विरुद्ध है। इससे अन्य बौद्ध संप्रदाय वालों ने इसकी बड़ी आलोचना की। सम्मितीयों के अनुसार पुग्गल (पुद्गल) भावात्मक वस्तु है, परंतु वह परमार्थतः सत्य नहीं। मनुष्य और देवलोक में वह भौतिक रूप में विद्यमान रहता है, उच्च कोटि के देवों के लोक में वह अरूपी है। पुद्गल प्राणियों के शरीर में सत्व या जीव का स्थानी है, परंतु वह शरीर से न अभिन्न है और न भिन्न।[13]

कुषाणों के समय में बौद्ध धर्म को जो शासकीय संरक्षण उपलब्ध था वह बाद में बहुत कम हो गया। परंतु बौद्ध धर्म का अस्तित्व यहां कई शताब्दियों तक बना रहा। महात्मा बुद्ध की कुछ उत्कृष्ट प्रतिमाएं मथुरा में गुप्तकाल में निर्मित हुईं, जिनके समान कलापूर्ण मूर्तियां भारत में अन्यत्र दुर्लभ हैं। चीनी यात्री फाह्यान ने, जो चंद्रगुप्त द्वितीय के समय में मथुरा आया, यहां की धार्मिक स्थिति का हाल अपने यात्रा विवरण में दिया है। उसके अनुसार मथुरा के छोटे-बड़े सभी लोग बौद्ध धर्म को मानते थे। इस यात्री ने मथुरा के 20 संघारामों का उल्लेख किया है, जिनमें लगभग 3,000 बौद्ध भिक्षु रहते थे। उसने छः बौद्ध स्तूपों का भी परिचय दिया है।

ई० सातवीं शती में दूसरा यात्री हुएन-सांग उत्तर भारत में आया। उसने मथुरा और उसके आसपास थानेश्वर, स्रुघ्न परियात्र, मतिपुर, गोविषाण, अहिच्छत्रा, 'पिलोसन्न,' सांकाश्य आदि अनेक स्थान देखे।[14] इन स्थानों में उसने हीनयान और महायान दोनों मतों के अनुयायी पाए। उसे हीनयानियों की संख्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक मिली। हुएन-सांग ने मथुरा में 20 बौद्ध संघाराम देखे, जिनमें अब 2,000 भिक्षु रहते थे और दोनों मतों के शास्त्रों का अध्ययन करते थे। उसने उपगुप्त के संघाराम की चर्चा की है और उस गुफा की भी जिसमें उपगुप्त के शिष्यों ने लकड़ियां एकत्र की थीं। इस यात्री के वर्णन से ज्ञात होता है कि कम से कम ई० सातवीं शती के मध्य तक मथुरा में बौद्ध धर्म की सभी मुख्य शाखाओं के मानने वाले विद्यमान थे। इन शाखाओं के सैद्धांतिक अध्ययन का एक बड़ा केंद्र यह नगर हो गया था।

सातवीं शती के बाद मथुरा और उसके आसपास बौद्ध धर्म के अस्तित्व का कुछ पता नहीं चलता। ऐसा प्रतीत होता है कि वैष्णव धर्म के उन्मेष ने बौद्ध धर्म की प्रगति को दबा दिया। हूणों के आक्रमण भी बौद्ध धर्म की क्षति के कारण हुए। गुप्तकाल के बाद बौद्ध अवशेष ब्रज में नाममात्र को मिले हैं। सातवीं शती के बाद ब्रज से बौद्ध धर्म प्रायः सदा के लिए बिदा हो गया।

जैन धर्म : प्राचीन जैन साहित्य में शूरसेन जनपद और मथुरा नगर के संबंध में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। पिछली शती में मथुरा के प्रसिद्ध कंकाली टीला की खुदाई अन्य महत्वपूर्ण सामग्री के साथ ई० दूसरी शती का एक लेख भी मिला, जिसमें इस टीले पर 'देवनिर्मित बौद्ध' नामक जैन स्तूप के निर्माण का उल्लेख है।

विद्वानों के अनुसार कंकाली टीला स्थान पर प्राचीनतम स्तूप का निर्माण ई० पू० छठी शती में या इसके भी कुछ पहले हुआ। जैन अनुश्रुति से यह बात पुष्ट होती है। इस अनुश्रुति के अनुसार सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के समय में मथुरा में एक रत्नजटित स्तूप का निर्माण कुबेरादेवी नामक महिला द्वारा किया गया। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के समय स्वर्णस्तूप को ईंटों से आवेष्टित कर उसे सुरक्षित बनाया गया। बाद में इस स्तूप का जीर्णोद्धार होता रहा। ई० दसवीं शती तक 'देव निर्मित स्तूप' उत्तर भारत का एक प्रमुख जैन केंद्र बना रहा।

जैन ग्रंथों में वर्णित है कि अंतिम जैन तीर्थंकर भगवान महावीर (599-527 ई० पू०) मथुरा गए।[15] तत्कालीन मथुराशासक का नाम उदितोदय या भीदाय मिलता है। महावीर स्वामी प्रधान शिष्य गणधर इंद्रभूति के शिष्य सुधर्माचार्य हुए। उनके उत्तराधिकारी जम्बू स्वामी की तपस्या और निर्वाण का स्थल मथुरा का वर्तमान चौरासी नामक स्थान माना जाता है। उनके अनंतर इस स्थान पर जम्बू स्वामी का मंदिर बना। कहते हैं कि जम्बू स्वामी के प्रभाव से मथुरा के 501 चोर साधु बन गए और उनकी मृत्यु के बाद उनके अवशेषों पर 501 स्तूपों का निर्माण हुआ।

नंद-मौर्य काल में मथुरा में जैन धर्म की स्थिति के संबंध में विशेष पता नहीं चलता। परवर्ती मौर्य शासक संप्रति के समय में अन्य कतिपय स्थानों की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरा में भी जैन धर्म की उन्नति हुई होगी।

शुंग तथा शक-कुषाण काल में मथुरा और उसके आस-पास जैन मत का पर्याप्त विकास हुआ, जिसकी पुष्टि तत्कालीन पुरातत्व अवशेषों से होती है। कंकाली टीला इस काल में उत्तर भारत का एक प्रमुख जैन केंद्र बना। यहां ई० पूर्व प्रथम शती से लेकर पूर्वमध्यकाल तक के जो प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें आयागपट्ट (पूजा के चौकोर शिलापट्ट), तीर्थंकर एवं देवी प्रतिमाएं तथा लोक-जीवन के विविध कलात्मक चित्रण उल्लेखनीय हैं। आयागपट्टों के मध्य में प्रायः पद्मासन पर ध्यान मुद्रा में स्थित तीर्थंकर प्रतिमा मिलती है। प्रतिमा के चारों ओर अष्ट मांगलिक चिह्न, स्तूप तथा अन्य अलंकरण बड़े कलापूर्ण ढंग से आलेखित मिलते हैं। तीर्थंकरों की प्रतिमाएं बहुत बड़ी संख्या में मिली हैं। आदिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर की प्रतिमाएं, अपेक्षाकृत अधिक मिली हैं। नेमिनाथ, सुव्रतनाथ[16] संभवनाथ, अरिष्टनेमि आदि अन्य कई तीर्थंकरों की मूर्तियां भी उपलब्ध हुई हैं। कुछ सर्वतोभद्रिका मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं, जिनमें एक शिलापट्ट पर चारों ओर एक एक प्रतिमा दिखाई गई है। देवियों में सरस्वती, आर्यवती, नैगमेषी तथा अंबिका की मूर्तियां मुख्य हैं।

शक-कुषाण काल की बहुसंख्यक जैन प्रतिमाएं अभिलिखित हैं। उनपर लेख ब्राह्मी लिपि में तथा मिश्रित संस्कृत-प्राकृत भाषा में लिखे हैं। इन लेखों से मथुरा के तत्कालीन जैन संप्रदाय के विभिन्न गणों, गच्छों, कुलों, शाखाओं आदि के नामों का पता चलता है। अनेक मुनियों, श्रावकों तथा उनके भक्त शिष्यों के नामों का पता भी इन लेखों से चला है।

उक्त लेखों से ज्ञात होता है कि धार्मिक कार्यों में स्त्रियों की आस्था पुरुषों से कहीं अधिक थी। उदाहरणार्थ, 'माथुरक' लवदास की भार्या तथा फल्गुयश नर्तक की स्त्री शिवयशा ने एक एक सुंदर आयागपट्ट बनवाए, जो इस समय लखनऊ संग्रहालय में हैं। इसी प्रकार का एक अत्यंत मनोहर आयागपट्ट (मथुरा सं० क्यू० 2) लवणशोभिका की लड़की वसु नामक वेश्या ने दान में दिया। वेणी नामक एक श्रेष्ठी की धर्मपत्नी कुमारमित्रा ने एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा की स्थापना करवाई और सुचिल की स्त्री ने शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा दान में दी। मणिकार जयभट्टि की दुहिता तथा लोहवणिज फल्गुदेव की धर्मपत्नी मित्रा ने वाचक आर्यसिंह की प्रेरणा से एक विशाल जिन प्रतिमा का दान दिया। आचार्य बलदत्त की शिष्या 'तपस्विनी' कुमारमित्रा ने एक तीर्थंकर मूर्ति की स्थापना करवाई। ग्रामिक जयनाग की कुटुंबिनी तथा ग्रामिक जयदेव की पुत्रवधू ने सं० 40 (118 ई०) में एक शिलास्तंभ का दान किया। गृहदत्त की पुत्री तथा धनहस्त की पत्नी ने धर्मार्थ नामक एक श्रमण के उपदेश से एक शिलापट्ट का दान किया, जिसपर स्तूपपूजा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का दृश्य अंकित है। श्राविका दत्ता ने सं० 20 (98 ई०) में वर्धमान प्रतिमा को प्रतिष्ठापित किया। राज्यवसु की स्त्री तथा देविल की माता विजयश्री ने एक मास का उपवास करने के बाद सं० 50 (128 ई०) में भगवान वर्धमान की प्रतिमा की स्थापना कराई। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं, जिनसे इस बात का पता चलता है कि प्राचीन मथुरा में जैन धर्म की उन्नति में महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान था।

शुंग काल या उसके कुछ पहले मगध के जैन संघ की प्रमुख शाखा दक्षिण चली गई और धीरे धीरे वह अनेक जनपदों में फैल गई। पहली शती में एक बड़ी जैन परिषद का आयोजन दक्षिण में वेण्या नदी पर स्थित महिमानगरी में किया गया। इसकी अध्यक्षता अर्हद्बलि ने की। परिषद में मूल जैन संघ को नंदि, देव, सेन, सिंह आदि कई संघों में विभक्त किया गया। इसके कुछ वर्ष बाद ही वलभी (सौराष्ट्र) में दिगंबर तथा श्वेतांबर--इन दो मुख्य मतों का प्रादुर्भाव हुआ।[17] मथुरा में भी ये दोनों मत अस्तित्व में आ गए परंतु बहुत समय तक उनमें विशेष भेदभाव नहीं मिलता।

ई० पूर्व 200 के लेकर प्रायः पूर्वमध्यकाल के अंत तक मथुरा के जैन संघ का भारत में महत्वपूर्ण स्थान रहा। यहां के सुसंगठित जैन संघ के अपने गण, कुल और शाखा थे। यहां के संघाचार्यों, उपाध्यायों, वाचकाचार्यों आदि को बाहर के लोग भी गुरु एवं पथ प्रदर्शक मानते थे।

महावीर स्वामी के कई सौ वर्ष बाद तक जैन सिद्धांतों को लिपिबद्ध नहीं किया गया। मौर्यकाल से भारत का पश्चिमी सभ्य देशों के साथ संपर्क बढ़ा। इससे जैन समाज भी अप्रभावित न रहा। दर्शन, साहित्य, ज्योतिष और कला के क्षेत्रों में भारत, यूनान तथा ईरान की संस्कृतियों में आदान-प्रदान आरंभ हो गया था। भारत के तत्कालीन प्रमुख धर्मों ने इसका लाभ उठाया और धर्म के व्यापक, सर्वग्राही रूप को कल्याणकारी माना गया। धार्मिक क्षेत्र में एक नई चेतना जागृत हुई। मथुरा जैसे भारत के प्रमुख धार्मिक केंद्र में यह चेतना फलवती हुई। यहां के जैन संघ ने भी बौद्ध एवं भागवत धर्म की तरह अपने सिद्धांतों को लिपिबद्ध करना प्रारंभ किया। प्राचीन जैन ग्रंथ प्राकृत भाषा में मिले हैं। ई० छठी शती से संस्कृत और उसके अपभ्रंश का प्रयोग किया गया। मथुरा में प्रथम शती में देवी सरस्वती को सर्वप्रथम मूर्त रूप प्रदान करना जैनियों की उक्त चेतना का प्रतीक है।

चौथी शती के आरंभ में मथुरा में आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में श्वेतांबर यति सम्मेलन का योजन किया गया। उसमें श्वेतांबरों द्वारा मान्य आगमों का पाठ और उनकी व्याख्या हुई। इन आगमों को संकलित कर उन्हें लिपिबद्ध करने का भी निश्चय किया गया। यह सम्मेलन 'माथुरी वाचना' के नाम से प्रसिद्ध है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैन परंपरा में यक्ष-यक्षियों, शासन-देवियों आदि का विस्तार गुप्तकाल में और उसके बाद हुआ। मथुरा से प्राप्त तत्कालीन मूर्त अवशेषों से इसकी पुष्टि होती है। तीर्थंकरों की कुछ अत्यंत कलापूर्ण प्रतिमाएं गुप्तकाल में यहां बनी।

सं० 826 (769 ई०) में ग्वालियरनरेश आमराज के गुरु वप्पभट्ट सूरि ने मथुरा तीर्थ का पुनरुद्धार किया। ऐसा 'विविध तीर्थकल्प' से ज्ञात होता है। उन्होंने कंकाली टीला पर स्थित प्राचीन जैन स्तूप की मरम्मत कराई और उसे पत्थरों से परिवेष्टित किया। इसी समय के आस-पास मथुरा में दिगंबर-श्वेतांबर भेद स्पष्ट रूप से सामने आया। संभवत: वप्पभट्ट सूरि की प्रेरणा से ही मथुरा में सर्वप्रथम श्वेतांबर मंदिर का निर्माण हुआ।

वप्पभट्ट सूरि के प्राय: समकालीन कुमारसेन नामक प्रसिद्ध दिगंबराचार्य ने मथुरा के काष्ठासंघ को पुन: संगठित किया और मुनि रामसेन ने उसके अंतर्गत 'माथुरगच्छ' की स्थापना की। इस संघ और गच्छ के आचार-विचार दक्षिण से कुछ भिन्न थे। अत: दक्षिणी जैन मुनियों ने इनकी तीखी आलोचना की। परंतु इसके होते हुए उक्त संघ और गच्छ की स्थिति दृढ़ होती गई। मध्यकाल में दिगंबर भट्टारकों की जो अनेक गद्दियां उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों में स्थापित हुईं उनमें से अधिकांश काष्ठासंघ के मथुरा गच्छ की ही थीं।

यद्यपि मथुरा में ई० आठवीं शती में दिगंबर तथा श्वेतांबर मतों के अलग अलग केंद्र स्थापित हो गए थे, परंतु उनमें पारस्परिक कटुता की भावना नहीं उत्पन्न हुई। दोनों मतों के अनुयायी प्राचीन स्तूपों, मूर्तियों आदि की समान भाव से पूजा करते थे। प्रारंभ में उनके आचार-विचार में विशेष अंतर न था।

'वृहत्कथाकोश' तथा अन्य ग्रंथों में मथुरा संबंधी अनेक कथाएं मिलती हैं, जिनसे इस समृद्ध नगर की सहिष्णुतापूर्ण धार्मिक स्थिति का पता चलता है।

मथुरा में बौद्ध धर्म की समाप्ति के बाद भागवत तथा जैन मतों का विशेष प्रचार हुआ। मध्यकाल के बहुसंख्यक जैनकलावशेष मथुरा और उनके आसपास से प्राप्त हुए हैं। कंकालीटीला से 11वीं 12वीं शती की विशाल तीर्थंकर प्रतिमाएं मिली हैं। इस काल तक मथुरा के अधिकांश जैन प्राय: अपने प्राचीन मंदिरों एवं मूर्तियों का ही उपयोग करते रहे। मथुरा के अतिरिक्त मध्यकाल में आगरा जिले का बटेश्वर (शौरिपुर) जैन धर्म का महत्वपूर्ण केंद्र बना। वहां बड़ी संख्या में जैन-मंदिरों और प्रतिमाओं का निर्माण हुआ।

भागवत धर्म : भक्ति प्रधान भागवत धर्म के उदय एवं उसके प्रारंभिक विकास का गौरव व्रजभूमि को प्राप्त है। इसका आरंभ यादव या सात्वत क्षत्रियों में हुआ। उन्हें नारायण का अवतार माना गया। भागवत धर्म को सात्वत, वासुदेव, पंचरात्र, एकांतिक तथा नारायण नामों से भी अभिहित किया गया। इस धर्म के चार 'ब्यूह'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए—वासुदेव कृष्ण, उनके भाई संकर्षण या बलराम, पुत्र प्रद्युम्न तथा पौत्र अनिरुद्ध। प्राचीन शूरसेन जनपद के बाहर सात्वत धर्म के फैलाने का प्रधान श्रेय इसी सात्वत वंश को दिया जा सकता है।

शूरसेन जनपद में भागवत धर्म का प्रारंभिक रूप क्या था, इसका पता नहीं चलता। संभवतः यह पहले प्रवृत्तिप्रधान धर्म था। कृष्ण-बलराम को देवरूप में मानने का सर्वप्रथम शिलालेख चित्तौरगढ़ के समीप नगरी के पास घोसुंडी नामक स्थान में मिला है। इसमें भगवान संकर्षण-वासुदेव के लिए 'पूजा-शिला' तथा वेदिका के निर्माण का उल्लेख है।[18] यह ई०पूर्व दूसरी शती का शिलालेख है और इस काल में कृष्ण-बलराम के मंदिर निर्माण का प्रमाण प्रस्तुत करता है। मथुरा के बाहर इसी काल का एक दूसरा शिलालेख मिला है, जो विदिशा नगरी के आधुनिक बेसनगर नामक स्थान में एक ऊंचे स्तंभ पर उत्कीर्ण है। इस लेख से ज्ञात होता है कि शुंगवंशी राजा काशीपुत्र भागभद्र के समय में तक्षशिला के यूनानी शासक अंतलिकित ने हेलिओदोर नामक राजदूत विदिशा भेजा। उसने यहां उक्त गरुड़-ध्वज को प्रतिष्ठापित किया। लेख में राजदूत ने अपने को 'भागवत' (विष्णु का भक्त) कहा है।[19]

मथुरा में ई० पूर्व दूसरी शती की हलधर बलराम की एक मूर्ति मिली है।[20] श्रीकृष्ण का सबसे प्राचीन कलावशेष वह मिला है जिसमें जन्मोपरांत उन्हें वसुदेव द्वारा यमुनापार गोकुल ले जाते हुए दिखाया गया है।[21] शुंगकाल के पहले भी श्रीकृष्ण को देवरूप में माना जाने लगा था, इसका आभास हमें यूनानी लेखक मेगस्थनीज के वर्णन से चलता है। एरियन ने मेगस्थनीज के विवरण का उद्धरण देते हुए लिखा है कि 'शौरसेनाइ' लोग 'हेराक्लीज' को बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे।[22] यहां 'शौरसेनाइ' शब्द शूरसेन जनपद के निवासियों के लिए और 'हेराक्लीज' श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है।[23]

शक-क्षत्रप शोडास के समय मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर वसु नामक व्यक्ति द्वारा एक मंदिर, तोरणद्वार और वेदिका का निर्माण कराया गया। इसका पता तोरण के लगभग ढाई मीटर लंबे सिरदल पर उत्कीर्ण लेख से चला है। इसी शासक के राज्यकाल का एक दूसरा लेख मथुरा जिले के मोरा नामक गांव से मिला है, जिसमें वृष्णियों के 'पंच महावीरों' का उल्लेख है।

कुषाणकाल में मथुरा में श्रीकृष्ण की अपेक्षा बलराम की मूर्तियों का निर्माण अधिक संख्या में हुआ। विष्णु भगवान की इस काल की जो प्रतिमाएं मिली हैं, उनमें उन्हें द्विभुज, चतुर्भुज या अष्टभुज रूप में अंकित किया गया है।

ईसवी पूर्व 200 तक शूरसेन जनपद में भागवत धर्म की जड़ें जम गई थीं। यद्यपि वैदिक यज्ञ और कर्मकांड अब भी यहां जारी थे। कुषाण शासक वासिष्क

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के राज्यकाल का एक अभिलिखित विशाल यूपस्तंभ मथुरा के ईसापुर नामक स्थान से प्राप्त हुआ है, जिसमें द्वादशरात्र यज्ञ के किए जाने का उल्लेख है। ईसापुर से ऐसा एक दूसरा यूपस्तंभ भी मिला है। व्रज में भागवत धर्म का सीधा सच्चा रूप धीरे धीरे लोगों को अधिक ग्राह्य हो चला। दान, व्रत, कथा-वार्ता, तीर्थ और योग द्वारा वासनामय जीवन को शुद्ध कर उसे सात्विक बनाना भक्ति का मुख्य उद्देश्य था। भागवतों ने समस्त चेतन-अचेतन के प्रति दयाभाव और करुणात्मक कर्म को श्रेय माना। घट-घट-व्यापी प्रेमस्वरूप भगवान के प्रति भक्तिभाव ही भागवत धर्म का मूल मंत्र हुआ। प्रारंभ में यह धर्म प्रवृत्तिमूलक रहा, परंतु कालांतर में वह निवृत्तिप्रधान बन गया।

उक्त प्रमुख धर्मों के अतिरिक्त मथुरा में शिव, इंद्र, अग्नि, सूर्य, कामदेव, मातृदेवी, दुर्गा, लक्ष्मी आदि का पूजन भी प्रचलित था। यक्ष-यक्षियों, नाग-नागियों की पूजा अब भी जारी थी। इन देवताओं की पूजा-अर्चा से संबंधित धर्मयात्राओं, संगीत-समाजों आदि का आयोजन होता रहता था। इसके प्रमाण तत्कालीन अनेक कलावशेषों में मिलते हैं।

ई० 200 से 1400 ई० तक के दीर्घ काल में व्रज में भागवत धर्मरूपी वट-वृक्ष की जड़ें गहरी जम गईं। इस महान वृक्ष की अनेक शाखाएं-प्रशाखाएं भी पल्लवित हुईं। गुप्तवंश के शक्तिशाली वैष्णव सम्राटों के समय में मथुरा को भागवत धर्म का एक प्रमुख केंद्र बनने का गौरव प्राप्त हुआ।[24] 'परमभागवत' महाराजाधिराज चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (376-413 ई०) के कई शिलालेख[25] मथुरा से मिले हैं। इस शासक ने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया, ऐसा एक लेख से ज्ञात हुआ है।

गुप्तकाल में भागवतों द्वारा अपने धर्म को सरल, व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया। उन्होंने वैदिक कर्मकांड तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित गृहस्थ धर्म में समन्वय स्थापित किया। यज्ञों तथा अन्य वैदिक क्रियाकलापों को विष्णु का रूप बताया गया। गृहस्थजीवन के लिए जो धर्म ग्राह्य हो सकता है उसकी सरल व्याख्या की गई। निष्काम कर्म के साथ भक्ति का मधुर रूप सामने आया। इस काल में अनेक संहिताओं या आगम ग्रंथों तथा पुराणों का निर्माण हुआ। वैष्णव सिद्धांतों के प्रसार में इस साहित्य से बड़ी सहायता मिली। जो संहिता ग्रंथ गुप्त-काल में बनाए गए उनमें मंदिरों के निर्माण तथा मूर्तिपूजा का विधान है। इस विधान में जटिलता का अभाव है। अन्य बातें जो संहिताओं और पुराणों में उपलब्ध हैं वे सदाचार, नीति, योगसाधना आदि हैं। पुराणों में अनेक आदर्श भक्तों के उपाख्यान मिलते हैं। इन उपाख्यानों में सदाचारमय जीवन को श्रेय बताया गया है। अहिंसा, त्याग और सत्य के साथ लोकसंग्रह की कल्याणकारी भावना भागवत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म के मूल में मिलती है। इस भावना ने जनता के एक बड़े भाग को न केवल धार्मिक बनाया अपितु उसमें निर्भयता और सहनशीलता का मंत्र फूंका।

गुप्तकाल के बाद भागवत धर्म का प्रसार ब्रजक्षेत्र में अनुदिन बढ़ता रहा। हर्षवर्धन के समय (606-647 ई०) में मथुरा में आए हुए चीनी यात्री हुएन-सांग ने मथुरा के पांच बड़े देवमंदिरों का उल्लेख किया है, जिनमें बहुत से साधु पूजा करते थे। आठवीं शती में भगवान कृष्ण का विशाल मंदिर कामवन (भरतपुर राज्य) में बना। इसे वहां के शूरसेनवंशी राजा दुर्गदामा की पत्नी ब्रच्छिका ने बनवाया। कामवन से प्राप्त एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह मंदिर स्थापत्य की एक उत्कृष्ट कृति थी और उसमें चित्ररचना भी थी।[26] इस लेख में कृष्ण के लिए 'घनश्याम', 'शौरि', 'मधुद्विष' आदि नाम दिए गए हैं।

मथुरा, कामवन, भांखरी (जि० अलीगढ़), बटेश्वर तथा टेहू (जि० आगरा) आदि स्थानों से विष्णु, लक्ष्मी-नारायण, कृष्ण, बलराम आदि की मध्यकालीन प्रतिमाएं बड़ी संख्या में मिली हैं। गुर्जर-प्रतीहारों तथा गाहड़वालों के शासनकाल में ब्रज में भागवत धर्म की बड़ी उन्नति हुई। पूर्वमध्ययुग का अंत होने के पहले उत्तर भारत में मथुरा वैष्णव धर्म का सर्वोच्च केंद्र बन गया और यहां सभी दिशाओं से धर्मप्रचारक आने लगे। चौदहवीं शती के बाद ब्रज में भागवत धर्म की जो प्रमुख शाखाएं प्रतिष्ठित हुईं उनका विवेचन आगे किया जाएगा।

ई० आठवीं से चौदहवीं शती तक दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति का प्रबल उत्थान हुआ, जिसका प्रभाव देशव्यापी हुआ।

शैव धर्म : भागवत मत के साथ साथ शैव या माहेश्वर धर्म का भी मथुरा में प्रचार रहा। कुषाणशासक विमकैडफाइसिस के सिक्कों पर उसे 'परममाहेश्वर' लिखा मिलता है। कनिष्क तथा उसके अनेक उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर भी शिव की प्रतिमा मिलती है। प्रायः शिव के साथ उनका बैल नंदी भी दिखाया जाता था। विदेशी शक और हूण लोग शैव धर्म से काफी प्रभावित हुए थे। मथुरा से प्राप्त कुषाणकालीन एक शिलापट्ट (संख्या 2661) पर शकों द्वारा शिवलिंग की पूजा दिखाई गई है। शिव की पूजा लिंग तथा मानुषी दोनों रूपों में होती थी। कुषाण तथा गुप्तकाल के कई मुखलिंग भी मिले हैं, जिनमें एक, चार या पांच मुख दिखाए गए हैं।

ब्रज में मानुषी रूप में शिव की मूर्तियां कुषाणकाल से मिलने लगती हैं। गुप्तकाल में शैव धर्म के अंतर्गत लुकलीश संप्रदाय का भी ब्रज में प्रचार हुआ। मथुरा की चांडूल-मांडूल बगीची से चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय का एक अभिलिखित स्तंभ मिला है, जिसपर नीचे लुकलीश की मूर्ति बनी है। लेख के अनुसार मथुरा के पाशुपत आचार्य उदिताचार्य ने गुप्त सं० 61 (380 ई०) में उपमितेश्वर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कपिलेश्वर नामक दो शिवलिंगों की प्रतिष्ठापना की। इस लेख द्वारा मथुरा में गुप्तकालीन पाशुपत संप्रदाय पर प्रकाश पड़ता है। लुकलीश की गुप्तकालीन एक अन्य कलापूर्ण प्रतिमा मथुरा से प्राप्त हुई। इसमें बीच में लकुटधारी शिव विराजमान हैं और उनके अगल-बगल ब्रह्मा तथा इंद्र हैं।

शिव-पार्वती की दंपत्ति-भाव वाली अनेक मूर्तियां भी ब्रज में मिली हैं। उत्तर गुप्तकाल की एक प्रतिमा (संख्या 2084) में शिव-पार्वती नंदी के साथ खड़े हुए प्रदर्शित हैं। अर्धनारीश्वर की गुप्तकालीन कई प्रतिमाएं कला की उत्कृष्ट कृतियां हैं। इनमें आधा भाग शिव का और शेष पार्वती का दिखाया गया है। शिव-परिवार के अन्य प्रमुख देवता गणेश तथा कार्तिकेय की भी मूर्तियां अच्छी संख्या में उपलब्ध हुई हैं। कामवन में शिव तथा उनके परिवार के देवों की अनेक सुंदर प्रतिमाएं मिली हैं।

उक्त कलावशेषों से पता चलता है कि मथुरा तथा ब्रज के अन्य कई स्थानों में शिव की पूजा का अच्छा प्रचार हो गया था। मथुरा के चार प्रमुख शैव केंद्र गोकर्णेश्वर, भूतेश्वर, रंगेश्वर तथा पिप्पलेश्वर हो गए थे।

अन्य मत : ब्रज में शाक्त मत का भी प्रचार हुआ। देवी के विविध रूपों की पूजा मथुरा और उसके आसपास विद्यमान थी। अंबिका, महाविद्या, चामुंडा, कंकाली, महिषमर्दिनी आदि की पूजा यहां होती थी। मथुरा के कई शक्तिपीठ आज तक मौजूद हैं। देवियों की बहुसंख्यक प्रतिमाएं कुषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक मिली हैं। उनसे पौराणिक कथनों की पुष्टि होती है कि देवी की अनेक रूप में ब्रज में पूजा-अर्चा होती थी। अनेक देवियों के नाम जिनकी पूजा मथुरा में प्रचलित थी, इस प्रकार मिलते हैं--अन्नपूर्णा, संकटा, मनसादेवी, गायत्री, चर्चिका, शीतला, मंसानी, कात्यायनी आदि। मथुरा जिले में नगला-झींगा, नरी-सेमरी, अकबरपुर आदि के देवीमंदिरों में भारी 'जातें' (धार्मिक समारोह) लगती हैं।

यक्षों, नागों, वृक्षदेवताओं आदि का पूजन मथुरा क्षेत्र में बहुत प्रचलित हुआ। यक्ष-यक्षियों और नागदेवों की मूर्तियां ब्रज में बड़ी संख्या में मिली हैं। यक्षों में कुबेर का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। मुख्यतया धन में अधिपति के रूप में उनका पूजन होता था। उनकी स्त्री हारीती की भी मान्यता बढ़ गई थी।

मथुरा में वैदिक देवों—अग्नि, सूर्य, चंद्र, ब्रह्मा आदि—के उपासक भी थे। परंतु इन देवों की पूजा को प्रमुखता न मिल सकी। विष्णु या शिव के मंदिरों में इन तथा कुछ अन्य देवों की मूर्तियां गौण रूप में रखने की प्रथा जारी रही।

उत्तरमध्यकाल : चौदहवीं शती के पश्चात ब्रज में मुख्यतः भागवत धर्म की विविध शाखाओं का विकास हुआ। दक्षिण और उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति के जो उत्थान हुए, प्रायः उन सबका प्रभाव ब्रज पर पड़ा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण के तमिल प्रदेश में भक्ति की प्रबल लहर उठी। उसके उद्भावक वहां के 'आड्वार' (भक्ति में तल्लीन) लोग थे। इनमें बारह प्रमुख आचार्य हुए। उनके द्वारा द्राविड़ भाषा में भक्तिरसपूर्ण पदावली की रचना की गई, जिसने दक्षिण की जनता को बहुत प्रभावित किया। ये भावुक आचार्य संस्कृत के पंडित थे और वैदिक क्रिया-कलापों के समर्थक थे। 14वीं शती के अंत तक चार प्रमुख वैष्णव संप्रदाय अस्तित्व में आ गए – निंबार्क, श्री, माध्व तथा रुद्र (या विष्णुस्वामी) संप्रदाय। ये संप्रदाय शंकराचार्य के मायावाद के विरुद्ध थे। इनके आचार्यों ने अपने अपने मत की पुष्टि में प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता) पर संस्कृत में भाष्यों का निर्माण किया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप भक्ति को जन-आंदोलन का रूप प्राप्त हुआ और पूजा-उपासना की नई पद्धतियां सामने आईं। आड्वारों के बाद अनेक विद्वान आचार्यों ने धर्म की व्याख्या की तथा तर्कसम्मत प्रमाणों द्वारों भक्ति की श्रेष्ठता घोषित की। उन्होंने भक्ति और कर्म का व्यावहारिक समन्वय भी जनता के सामने रखा। इन आचार्यों में रंगनाथ, यामुनाचार्य, मध्व, विष्णुस्वामी, रामानुज आदि महानुभाव प्रसिद्ध विद्वान हुए, जिनके अनेक शिष्य-प्रशिष्यों ने भक्तिमार्ग को प्रशस्त बनाया।

दक्षिण का भक्ति-आंदोलन दो प्रमुख संप्रदायों में बंटा—श्रीवैष्णव तथा माध्व। पूर्व में बंगाल भक्ति उत्थान का केंद्र बना। महाप्रभु चैतन्य 16वीं शती में इस उत्थान के प्रमुख संचालक हुए। उनके पहले बंग की उर्वरा भूमि में राधाकृष्ण भक्ति के बीज प्रस्फुटित हो चुके थे। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' की रचना संभवतः वहीं हुई। रसिकप्रवर जयदेव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गीतगोविंद' का तथा चंडीदास ने अपने सरस पदों का प्रणयन वहीं किया। सहजिया वैष्णव संप्रदाय बंगाल का एक उल्लेखनीय पंथ बना। इसमें परकीया प्रेमपद्धति का उत्कर्ष राधा-कृष्ण की मधुर क्रीड़ाओं के रूप में मिलता है।

चैतन्य के लगभग समसामयिक जिन अन्य महानुभावों ने सगुण भक्ति के क्षेत्र में प्रमुखता प्राप्त की उनमें हितहरिवंश, स्वामी हरिदास तथा गोस्वामी तुलसीदास के नाम विशेष महत्व के हैं। इनमें से प्रथम दो का ब्रज से घनिष्ठ संबंध रहा और ये संप्रदायप्रवर्तक भी हुए। उत्तर भारत में रामभक्ति का उन्मेष इस काल में कृष्ण भक्ति के साथ साथ हुआ। स्वामी राघवानंद और उनके शिष्य स्वामी रामानंद ने दक्षिण की वैष्णव भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया। रामानंदजी मूलतः श्रीरामानुज के विशिष्टाद्वैत के ही अनुयायी हुए। परंतु वे श्रीवैष्णवों द्वादशाक्षर मंत्र के स्थान पर रामषडक्षर मंत्र को मानते थे और राम को ही परमपुरुष मानते थे।

रामानंद जी के शिष्यों में महात्मा कबीर अग्रगण्य हैं। अन्य शिष्य सेन, पीपा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रैदास, धन्ना आदि माने जाते हैं। इन शिष्यों द्वारा निर्गुण भक्तिवाद पर जोर दिया गया। इन निर्गुणियों का प्रभाव उत्तर भारत के कई भागों में पड़ा। परंतु ब्रज में उनका अधिक प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि सगुण भक्ति की जड़ें यहां काफी गहरी जम गई थीं।

विष्णुस्वामी संप्रदाय : आचार्य श्रीविष्णुस्वामी के इतिवृत्त के संबंध में प्रामाणिक जानकारी का अभाव है। अनुश्रुति के अनुसार वे दो बार वृंदावन गए और वहां उन्होंने ब्रज के वनों की यात्रा की। आचार्यजी ने वेदांत सूत्रों पर 'सर्वज्ञसूक्त' नामक भाष्य लिखा।

आचार्य श्री विष्णुस्वामी ब्रह्म को माया से सर्वथा रहित अर्थात शुद्ध मानते हैं, अतएव उनका मत दार्शनिक जगत में 'शुद्धाद्वैत' नाम से विख्यात है। उनके श्रुतिशास्त्र प्रतिपादित भक्तियोग में भगवदनुग्रह की प्रधानता है, अतएव उनका भक्तिपथ 'अनुग्रहमार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है।

विष्णुस्वामी संप्रदाय के आराध्य सप्तवर्षीय बालगोपाल भगवान नंदनंदन हैं। उनका सायुज्य, अर्थात प्रभु के श्रीचरणों की दास्यभाव से नित्यसेवा प्राप्ति, ही मुक्ति है। इस मत के अनुसार वेदोक्त कर्म-ज्ञानादि मार्गों की अपेक्षा भगवद्-अनुग्रह प्रधान भक्तियोग ही श्रेष्ठ है। अतएव श्रेयस्कामी पुरुषों को 'अनुग्रहमार्ग' का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

वल्लभ संप्रदाय : आचार्य वल्लभ का शुद्धाद्वैत मूलक पुष्टि संप्रदाय वैष्णव-चतुष्टयी में 'रुद्र संप्रदाय' नाम से प्रसिद्ध है। इसके प्रधान प्रवर्तक विष्णुस्वामीजी थे। परंतु इसका पल्लवन और प्रचार वल्लभाचार्यजी ने किया। आचार्य वल्लभ का जन्म सं० 1535 (1478 ई०) में चंपारण्य (जिला रायपुर, मध्यप्रदेश) में तैलंग ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट तथा माता का एल्लमागारु था। वल्लभ की शिक्षा-दीक्षा काशी में संपन्न हुई। काशी, अड़ैल (प्रयाग के समीप) तथा ब्रज में इनके जीवन की अनेक घटनाएं घटित हुईं। वल्लभाचार्य जी तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने ब्रज को अपना प्रमुख साधनाक्षेत्र बनाया। उन्होंने यहां के वनों की यात्रा की। दिल्ली शासन की ओर से विट्ठलनाथ जी को गोकुल और गोवर्धन की भूमि प्रदान की गई। यहां संप्रदाय के केंद्रों का निर्माण हुआ। धीरे धीरे गोकुल, गोवर्धन, जतीपुरा, कामवन आदि स्थान इस संप्रदाय के प्रमुख केंद्र हो गए।

वल्लभाचार्य जी का संप्रदाय शुद्धाद्वैत या पुष्टिमार्ग नाम से प्रसिद्ध है। ब्रज, राजस्थान, गुजरात और सौराष्ट्र में इसका बड़ा प्रचार हुआ। इनके उपास्यदेव भगवान कृष्ण तथा प्रमुख ग्रंथ श्रीमद्भागवत है। संप्रदाय के अनुसार भगवान कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है। उपनिषदों में ईश्वर प्राप्ति के हेतु ईश्वर के अनुग्रह के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्व का संकेत मिलता है। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग को मर्यादा मार्ग से भिन्न माना। जिस मार्ग में फल कर्म के अनुसार न मिलकर ईश्वर की कृपा तथा अनुग्रह या पुष्टि से मिले वह 'पुष्टिमार्ग' है। यह मार्ग शंकर के मायावाद का खंडन करता है और भक्ति की प्रबल स्थापना करता है।

इस संप्रदाय में प्रपंच और संसार नितांत भिन्न माने गए हैं। प्रपंच भगवत्कृपाजन्य होने से सत्य है। अहंतात्मक होने के कारण संसार मिथ्या है। जीव चैतन्य स्वरूप ब्रह्म नहीं। वह भगवदंश अणुस्वरूप, विसर्पिगुण चैतन्य है।

पुष्टिमत में श्रीकृष्ण का रूप इस प्रकार माना गया है : क्षर परमात्मा का आधिभौतिक रूप है। परमात्मा का आध्यात्मिक तत्व वह है जिसका अधिष्ठान लेकर परमात्मा ने प्रकृति पुरुष का रूप धारण किया है। यह अक्षर ब्रह्म है। इन दोनों से श्रेष्ठतम, नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वरूप, पूर्णावतार, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण हैं।

वल्लभाचार्यजी ने अपने संप्रदाय के सिद्धांतों का प्रकाश करने के लिए अनेक संस्कृत ग्रंथों की रचना की। इनमें मुख्य हैं : (1) 'अणुभाष्य' (ब्रह्मसूत्र पर आंशिक भाष्य), (2) 'पूर्व मीमांसा भाष्य', (3) 'तत्वदीप निबन्ध', (4) 'सुबोधिनी' (भागवत का टीका) और (5) 'षोडस ग्रंथ' (सिद्धांत-संबंधी 16 ग्रंथ)। उनके विद्वान पुत्र विट्ठलनाथ जी ने 'अणुभाष्य' की पूर्ति के साथ 'विद्वन्मण्डल', 'भक्तिहंस', 'भक्तिनिर्णय', 'निबन्धप्रकाश-टीका', 'सुबोधिनी टिप्पणी', 'शृंगार-रसमण्डन' आदि अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया। विट्ठलनाथ जी के यशस्वी पुत्र गोकुलनाथ जी हुए, जिन्होंने भक्ति को साधारण जन तक पहुंचाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने ब्रजभाषा के दो गद्यग्रंथ भी रचे—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता।' साहित्यसृजन की यह परंपरा इस संप्रदाय में बराबर जारी रही। परवर्ती गोस्वामी महानुभावों और उनके शिष्यों ने संस्कृत एवं ब्रजभाषा में प्रभूत साहित्य की रचना की। इस संप्रदाय में सूरदास प्रभृति अष्टछाप कवियों ने तो ब्रजभाषा की महती सेवा की। वल्लभाचार्यजी और उनके अनुयायियों ने साहित्य और कला का उत्थान करने के साथ ब्रजभूमि का गौरव बढ़ाने में महान योग दिया।

चैतन्य संप्रदाय : मध्यकालीन वैष्णव धर्म के इतिहास में महाप्रभु चैतन्य का अत्यंत उच्च स्थान है। उनके प्रेमविह्वल चरित ने भक्ति की जिस स्रोतस्विनी को बहाया उससे न केवल बंग और कलिंग की भूमि सिंचित हुई अपितु ब्रजमंडल भी आप्लावित हो गया। चैतन्यजी का जन्म नदिया (बंगाल) के एक ब्राह्मणकुल में सं० 1542 (1485 ई०) में हुआ। बाल्यकाल से ही वे कुशाग्रबुद्धि थे। उन्होंने अनेक शास्त्रों, विशेषतः तर्कशास्त्र में प्रवीणता प्राप्त की। आचार्य केशवपुरी के गुरुभाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केशव भारती से उन्होंने संन्यासदीक्षा ग्रहण की। फिर उन्होंने अपने को पूर्णतया भगवद्भक्ति के प्रचार में लगा दिया।

भारत के अनेक प्रमुख तीर्थों की यात्रा के पश्चात महाप्रभु का ध्यान वृंदावन की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने अपने सहपाठी लोकनाथ को वृंदावन भेजा। कहते हैं कि लोकनाथजी के साथ भूगर्भ आचार्य भी वहां गए। इसके पहले माधवेंद्रपुरी जी, अद्वैत प्रभुजी तथा नित्यानंदजी ब्रज में जा चुके थे। सं० 1572 (1515 ई०) के लगभग चैतन्यजी स्वयं मथुरा-वृंदावन गए और कुछ समय तक वहां रहे।[27] वहां से जगन्नाथपुरी जाकर उन्होंने भक्ति का व्यापक प्रचार किया।

ब्रजभूमि से महाप्रभुजी को अत्याधिक स्नेह था। यहां के तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार कर भक्ति की ज्योति आलोकित करने के लिए महाप्रभुजी ने प्रसिद्ध गोस्वामी बंधुओं—रूप और सनातन – को वृंदावन भेजा। अपने उच्च राजकीय पदों का त्याग कर उन दोनों ने बड़ी निष्ठा एवं श्रम के साथ ब्रज के अनेक लुप्त तीर्थों को ढूंढ़ निकाला। ब्रज में एक लंबे समय तक रहकर इन प्रातः स्मरणीय बंधुओं ने सरस संस्कृत में विविध ग्रंथों का प्रणयन किया और जनता को भक्ति की ओर आकृष्ट किया।

रूप-सनातन तथा अन्य अनेक महानुभावों का स्थाई निवास ब्रजभूमि के लिए बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ। मथुरा, वृंदावन, गोवर्धन और गोकुल में अनेक विशाल मंदिरों का निर्माण हुआ। वृंदावन का प्रख्यात गोविंददेव मंदिर रूप-सनातन की प्रेरणा से जयपुर के राजा मानसिंह द्वारा बनवाया गया। रूप और सनातन के अतिरिक्त चैतन्य संप्रदाय के अन्य चार आचार्य विशेष प्रसिद्ध हैं। रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी। ये छहों मिलकर 'षट् गोस्वामी' नाम से प्रख्यात हैं।

संस्कृत, ब्रजभाषा तथा बंगला में लिखा गया चैतन्य मत का प्रचुर साहित्य काव्य के उत्कर्ष एवं भक्ति निरूपण की दृष्टि से अत्यंत उच्च कोटि का है। 'ब्रज और बंगाल ही नहीं, प्रायः समस्त उत्तर भारत में इस साहित्य का गौरवास्पद स्थान रहा है। उपर्युक्त अनेक संत साहित्यकारों की समाधियां वृंदावन, गोवर्धन, राधाकुंड आदि ब्रज के विभिन्न स्थानों में विद्यमान हैं।'[28] ब्रज चौरासी कोस में इस सप्रदाय से संबंधित कितने ही महत्वपूर्ण स्थल दर्शनीय हैं।

चैतन्य मत का दार्शनिक सिद्धांत 'अचिंत्य भेदाभेद' नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार ब्रजेश नंद के पुत्र कृष्ण ही आराध्य देव हैं। उनका धाम वृंदावन है। ब्रज की गोपियों द्वारा की गई उपासना ही श्रेयस्कर है। 'भागवतपुराण' ही पवित्र प्रमाणशास्त्र है। प्रेम ही महान पुरुषार्थ है। श्रीचैतन्य महाप्रभु का यही मत है।

निंबार्क संप्रदाय : वैष्णव मतों के अंतर्गत निंबार्क संप्रदाय का भी उच्च स्थान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्रजभूमि के साथ इस संप्रदाय का संबंध पुरातन है। कहा जाता है कि निंबार्काचार्य जी ने स्वयं मथुरा नगरी में इस मत की प्रतिष्ठापना की।[29] निंबार्काचार्यजी के समय तथा उनके संप्रदाय के प्रारंभिक विकास के संबंध में अभी प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

आजकल निंबार्क संप्रदाय की प्रमुख गद्दी सलेमाबाद (किशनगढ़) राजस्थान में है। इससे पहले मुख्य गद्दी गोवर्धन गिरि की तहलटी में नीमगांव (जिला मथुरा) में थी। इसी स्थान पर श्रीनिंबार्काचार्य का आश्रम बताया जाता है। कालांतर में मथुरा नगर के नारद टीला और ध्रुव टीला तथा राधाकुंड एवं वृंदावन में भी संप्रदाय के केंद्र स्थापित किए गए। नीमगांव से सलेमाबाद में गद्दी का स्थानांतरण परशुरामदेवाचार्य ने किया।

मथुरा नगर में इस संप्रदाय से संबंधित मुख्य स्थान ध्रुव टीला है। श्री केशव काश्मीरी यहां अपनी द्वितीय दिग्विजय के समय रहे थे। अनुश्रुति है कि उन्होंने यहां रहकर कई आश्चर्यजनक कार्य संपादित किए।

निंबार्क मत के आद्याचार्य हंसनारायण माने जाते हैं। वे राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के प्रतीक हैं। आचार्य हंसनारायण ने इस मत की दीक्षा सनत्कुमारों को दी। सनत्कुमार से इस सिद्धांत को नारद ने लिया। नारदजी ने यह तत्व निंबार्काचार्य जी को बताया। फिर निंबार्काचार्य के शिष्यों की परंपरा चली।

सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार निंबार्काचार्यजी तैलंग ब्रह्माण थे और उनका प्रारंभिक नाम नियमानंद था। वे नीमगांव में शालिग्राम प्रतिमा की पूजा करते थे। इन शालिग्राम का आकार एक चने के दौल के बराबर था। यह प्रतिमा अब सलेमाबाद में विद्यमान है। निंबार्काचार्यजी ने अपने मत के प्रतिपादन के लिए कई ग्रंथों की रचना की। उनमें 'वेदांतपारिजातसौरभ' तथा दशश्लोकी' मुख्य हैं। प्रथम 'ब्रह्मसूत्र' पर संक्षिप्त भाष्य है। दूसरे में सिद्धांत प्रतिपादन के लिए लिखे गए दस श्लोक हैं। इसकी महत्वपूर्ण टीकाएं श्री पुरुषोत्तमाचार्य ने तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य ने की हैं।

इस संप्रदाय में सभी आचार्य श्रीजी (राधा) के रूप माने जाते हैं। निंबार्काचार्यजी को सुदर्शन चक्र का अवतार माना जाता है। सभी सांप्रदायिक मंदिरों में इनकी पूजा का विधान है। संप्रदाय में सुदर्शन चक्र के श्रीरंगदेवी आदि आठ रूप माने गए हैं। स्वामी निंबार्क रंगदेवी के रूप में उपासना करते थे। इस उपासना का केंद्रभाव शृंगारमय उज्ज्वल रस है। राधा को कला की शिक्षा देने वाली सखी का नाम रंगदेवी है। सखाओं में स्वामी निंबार्क तोषसखा के स्वरूप में थे। इसमें सख्यभाव प्रबल था। तोषसखा श्रीकृष्ण को नृत्यकला सिखाता था। आज भी नीमगांव में छोटी दिवाली को 'ग्वालमंडली' का उत्सव होता है, जिसमें मुख्य लीला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोष के द्वारा श्रीकृष्ण को नृत्य-शिक्षा का प्रदर्शन है।

निंबार्काचार्यजी सर्वेश्वर शालिग्राम की पूजा करते थे। उन्हें वे राधा-कृष्ण की युगलमूर्ति का प्रतीक मानते थे। जो शालिग्राम स्वामी निंबार्क के इष्ट थे उनकी मूर्ति में सहस्रारचक्र का चिह्न दिखाई देता है। इस मूर्ति को गद्दीश आचार्य यात्रा के समय अपने गले में धारण किए रहते हैं। अन्य स्थानों के कई महंत भी अपने गले में शालिग्राम को धारण करते हैं। शालिग्राम की पूजा का विधान इस संप्रदाय में विशेष रूप से है। अन्य वैष्णव संप्रदायों की भांति इस संप्रदाय में भी अष्टयाम सेवा का विधान है। मंदिरों में सात झांकियां होती है: मंगला, स्नान, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्या आरती, रास प्रकरण तथा शयन। वल्लभ संप्रदाय में 'ग्वाल' के दर्शन भी होते हैं।

निंबार्कियों का तिलक विशेष प्रकार का होता है। सफेद गोपीचंदन की श्री और उसके बीच में काली बिंदी होती है। इस काली बिंदी को शालिग्राम का प्रतीक तथा श्री को मंदिर का रूप माना जाता है। मंदिरस्थ शालिग्राम ही इनके तिलक की व्याख्या है।

ब्रज में निंबार्क संप्रदाय से संबंधित अनेक स्थल हैं। मथुरा में ध्रुव टीला और नारद टीला एवं बृंदावन में श्रीजी की वड़ी कुंज, श्यामकुटी, टट्टी संस्थान, टोपीवाली कुंज, वंशीवट, माधवविलास आदि अनेक प्रतिष्ठित एवं दर्शनीय स्थान हैं। वृंदावन में संप्रदाय के अनेक मंदिर हैं, कुछ पुराने मंदिरों की दशा जीर्ण है। राधाकुंड, नीमगांव, गिरिराज की तलहटी, सहार, नंदगाव, बरसाना, कोकिलावन आदि में भी संप्रदाय से संबंधित विविध स्थल हैं।

हरिदासी संप्रदाय: अनन्य रसिक स्वामी हरिदासजी ब्रज की महान विभूतियों में से हैं। एक मान्यता के अनुसार स्वामीजी निंबार्क संप्रदाय के थे। बलदेव उपाध्याय का मत है: 'स्वामीजी प्रथमतः निंबार्क मत के ही अनुयायी थे, परंतु भगवत्प्राप्ति के लिए गोपीभाव को एक मात्र उन्नत साधन मानकर उन्होंने इस स्वतंत्र मत (सखी संप्रदाय) की प्रतिष्ठा की।'[30] दूसरे मत के अनुसार 'स्वामीजी का निंबार्क संप्रदाय से कोई संबंध न था तथा वे श्री विष्णुस्वामी मत के अंतर्गत एक स्वतंत्र संप्रदायाचार्य हुए। उनके मत को 'सखी संप्रदाय' तथा उनके सिद्धांत को 'इच्छाद्वैत' कहा जाता है।'[31]

उक्त दोनों मतों के मानने वाले स्वामीजी के जीवनवृत्त को भी एक दूसरे से भिन्न रूप में मानते हैं। इस संबंध में अभी अधिक शोध आवश्यक है।

स्वामीजी की दो रचनाएं प्रसिद्ध हैं: 'केलिमाल' तथा 'सिद्धांत के पद'। ये ब्रजभाषा में हैं। उनके अनुवर्ती अनेक संस्कृत कवि भी बताए जाते हैं। परंतु इस संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा में अधिक लिखा और ये रचनाएं उच्चकोटि की हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामीजी अद्वितीय संगीतज्ञ और महान भक्त हुए। राधा-कृष्ण की सखी भाव से अनन्य भक्ति एवं तज्जनित रस की अनुभूति ही उनकी साधना थी। इसी हेतु उनका मत 'सखी संप्रदाय' नाम से अभिहित हुआ। उनके राधा-कृष्ण का स्वरूप निर्गुण-सगुण ब्रह्म की सत्ता से परे है। ब्रह्म और जीव इच्छा से ही द्वैत रूप माने गए हैं। नित्य किशोर रसरूप कृष्ण ही आराध्य ब्रह्म हैं, जो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। जीव, अणु और चैतन्य है। वह अल्पज्ञ और अल्पशक्ति है। जगत का रूप मृगतृष्णा के समान है, वह अनित्य है।

वृंदावन में इस संप्रदाय का मुख्य केंद्र श्री बिहारीजी का मंदिर है। बिहारीजी स्वामीजी के उपास्य देव थे और उन्हीं के द्वारा निधिवन में उनका प्राकट्य हुआ था। वृंदावन में बिहारीजी की बहुत बड़ी मान्यता है। निधिवन प्राचीन वृंदावन की कमनीयता को संजोए हुए है। यहीं स्वामीजी की समाधि विद्यमान है।

राधावल्लभीय संप्रदाय : इस संप्रदाय का आविर्भाव और विकास ब्रजभूमि पर हुआ। इसके प्रवर्तक श्रीहितहरिवंशजी थे। उनके पूर्वज मथुरा जिला के बाद नामक गांव के निवासी थे। हितजी के पिता श्रीव्यास मिश्र सहारनपुर जिला के देववन (देवबंद) नामक स्थान पर रहने लगे थे। सं० 1559 (1503 ई०) में उनकी पत्नी ताराजी ने बाद ग्राम में हितजी को जन्म दिया। बाद से देववन जाकर हितजी गृहस्थजीवन का निर्वाह करते हुए हरिभक्ति में निमग्न रहने लगे। कुछ समय पश्चात वे वृंदावन जाकर वहीं स्थाई रूप से रहने लगे।

हितजी राधा-कृष्ण की युगलमूर्ति के भक्त थे। सं० 1591 (1534 ई०) में उन्होंने वृंदावन में श्रीराधावल्लभजी की प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की। उनके सिद्धांत में तत्वतः यही युगल-उपासना है। वह श्रीकृष्ण की वंशी का अवतार माने जाते हैं। माधुर्य भक्ति को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाकर हितजी ने एक परम सरस उपासना मार्ग को प्रशस्त किया। संस्कृत के साथ ब्रजभाषा पर भी उनका सहज अधिकार था। उनके ग्रंथ 'चतुरासी' के पदों में ब्रजभाषा का अत्यंत निखरा रूप देखने को मिलता है। अक्षरप्रधान संगीत में भी वह निष्णात थे। उनकी संगीत-पद्धति 'समाज' नाम से विख्यात हुई। ब्रजभूमि के अनेक अज्ञातप्राय स्थलों की महिमा का उद्घोष कर हितजी ने ब्रजभूमि का गौरव बढ़ाया। सं० 1609 (1552 ई०) में 50 वर्ष की आयु में हितजी निकुंजलीला में प्रविष्ट हो गए।

हितजी ने संस्कृत में दो ग्रंथों का प्रणयन किया : 'राधासुधानिधि' तथा 'यमुनाष्टक'। पहले ग्रंथ में 270 पद्य हैं, जिनमें राधा की छवि, उनकी कुंजकेलि और भक्ति का अत्यंत मनोहारी वर्णन है। श्रीवृंदावन तथा यमुना का भी भावपूर्ण वर्णन किया गया है। दूसरा ग्रंथ यमुनाजी की 8 श्लोकों में प्रशस्ति है।

ब्रजभाषा में हितजी के दो ग्रंथ : 'हित चौरासी' तथा 'स्फुटवाणी' है। ये दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारंभिक ब्रजभाषा की आदर्श रचनाएं हैं। इनमें रस एवं प्रेमसिद्धांत की अभिव्यक्ति परिष्कृत ब्रजभाषा में मिलती है। हितजी के दो गद्यपत्र भी प्राप्त हैं, जो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य वीठलदास को लिखे थे। प्राचीन पत्रशैली पर इन दोनों पत्रों से अच्छा प्रकाश पड़ता है।[32]

हितजी के बाद इस संप्रदाय के अनेक महानुभावों का विपुल साहित्य मिलता है। इसमें सेवकजी की वाणी का धार्मिक दृष्टि से ऊंचा स्थान है। उसे 'हितचौरासी' की पूरक वाणी माना जाता है। संप्रदाय के अन्य प्रसिद्ध लेखक हरिराम व्यास, ध्रुवदास, नागरीदास, रूपलाल तथा चाचा वृंदावनदास हुए। इन तथा संप्रदाय के अन्य लेखकों ने साहित्य के भावपक्ष को समुन्नत किया। ब्रजभूमि, राधा-कृष्ण भक्ति और उनकी सरस क्रीड़ाओं का हृदयग्राही रूप इन कवियों की वाणी में प्रवाहित हुआ है।

इस संप्रदाय का परमोपास्य वह परमरस है जो श्रीकृष्ण और राधा के रूप में ब्रज-धरा पर अवतीर्ण हुआ। वह परमरस प्रकृतितः क्रीड़ा-लीला-शील है। अपनी क्रीड़ा के लिए वह प्राणात्मा को राधा, मन को श्रीकृष्ण, देह को वृंदावन और इंद्रियों को सखियों के रूप में अवतरित करके अपनी वृंदावन लीला की संयोजना करता है। इस रसोपासना में श्रीराधा ही इष्ट हैं। सखीभाव से संसिक्त रसिक-हृदय ही इस अलौकिक रस के आस्वादन का अधिकारी है, न कि विषयी जीव। भगवान कृष्ण की वृंदावनलीला स्वकीया-परकीया भाव से परे है। भक्त अपने ध्यान में राधा-कृष्ण युगलमूर्ति की प्रेमलीला की दिव्य अनुभूतिप्राप्ति के लिए सयत्न रहता है। इस प्रकार की रसोपासना वेदशास्त्र की मर्यादा से भी स्वच्छंद है।

संगीत की 'समाज' प्रणाली भी इस संप्रदाय की एक विशेषता है। श्रीराधा-कृष्ण की मधुर अंतरंग लीलाओं का जो गायन विभिन्न भावों के पदों के रूप में किया जाता है उसकी संज्ञा 'समाज' है। इसमें एक प्रधान गायक होता है, जिसका अनुकरण साथ बैठे हुए अन्य गायकों द्वारा किया जाता है। विभिन्न उत्सवों के अवसर पर तदनुकूल पदों का गायन विविध राग-रागिनियों में होता है। श्रीजी का अनुरूप शृंगार भी इन उत्सवों पर किया जाता है। गेय पदों के संग्रह 'वर्षोत्सव' नाम से प्रसिद्ध हैं। हितजी के अतिरिक्त इस संप्रदाय में व्यासजी, ध्रुवदासजी, दामोदरवरजी, गंगाबाई, यमुनाबाई, वल्लभजी आदि अनेक महान संगीतज्ञ हुए। उनके द्वारा एक नूतन तालबद्ध परिपाटी का उन्नयन किया गया।

संप्रदाय का मुख्य दीक्षामंत्र श्रीराधारानी-मुखोक्त 'युगलमंत्र' मान्य है। तिलक और तुलसी की कंठी धारण करने की प्रथा है।

ब्रज में राधावल्लभीय संप्रदाय की व्यापकता का मुख्य श्रेय आचार्य हितजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उनके परवर्ती अनेक महानुभावों के व्यक्तित्व को दिया जा सकता है। यह संप्रदाय विभिन्न विधिनिषेधों, जटिल क्रिया-कलापों आदि के बंधनों से मुक्त रहा है। ब्रज के प्रमुख स्थानों में तथा बाहर आज भी इस संप्रदाय का अच्छा प्रचार है। ब्रज में वृंदावन इसका प्रमुख केंद्र है। वहां सेवाकुंज, वंशीवट, रासमंडल, मान सरोवर धीरसमीर, हिंदोलस्थल, श्रृंगारवट आदि अनेक स्थल संप्रदाय से संबंधित माने जाते हैं। इनमें से कई के अधिकारी अब भी संप्रदाय के लोग हैं। हितजी द्वारा वृंदावन के सेवाकुंज, वंशीवट, रासमंडल आदि अनेक स्थलों का पुनरुद्धार किया गया, ऐसी प्रामाणिक मान्यता है। वास्तव में हितजी ने वृंदावन के महत्व को बढ़ाने में बहुत बड़ा योग दिया। वृंदावन के अतिरिक्त ब्रज में बाद, अड़ींग, गोवर्धन राधाकुंड, बरसाना, डीग, कामवन, कोसी, रावल, बरारी आदि में कितने ही पवित्र दर्शनीय स्थल हैं, जो इस संप्रदाय से संबंधित हैं।

श्री संप्रदाय : ब्रज में रामानुजाचार्य के श्री संप्रदाय का मुख्य मंदिर श्री रंगजी का मंदिर है। इसका निर्माण वृंदावन में 1845 ई० में प्रारंभ होकर 1851 में पूरा हुआ। मथुरा के प्रसिद्ध सेठ परिवार के दो भाइयों—गोविंददास और राधाकृष्ण—द्वारा 45 लाख रुपए के प्रभूत व्यय से यह मंदिर बनाया गया। त्रिशालता की दृष्टि से यह ब्रज का सबसे बड़ा मंदिर है।[33] इसका भव्य गोपुर, गर्भगृह तथा भीतर की दीवारें अनेक प्रतिमाओं से अलंकृत हैं। ये प्रतिमाएं तथा मंदिर का सारा स्थापत्य दक्षिणी शैली का है। मंदिर की पूजा-अर्चा भी दक्षिण के श्रीवैष्णवों की पद्धति पर होती है। मुख्य प्रतिमा भगवान नारायण की है। मंदिर के सामने स्वर्णमंडित ध्वजस्तंभ (ऊंचाई लगभग 19 मीटर), पुष्कर नामक तालाब तथा उद्यान हैं। रथ-यात्रा, वैकुंठोत्सव आदि अनेक उत्सव यहां समारोह के साथ मनाए जाते हैं। मथुरा में श्री संप्रदाय का मुख्य मंदिर श्री गतश्रमनारायण का है।

निर्गुण पंथ : मथुरा, वृंदावन, आगरा आदि स्थानों में अनेक निर्गुण पंथों ने भी अपने केंद्र स्थापित किए। इनमें मथुरा के चरणदासी तथा अंतापाड़ा के योगी, वृंदावन के मूलकदासी, कबीरपंथी और साहिबपंथी तथा आगरा के राधास्वामी मत वाले उल्लेखनीय हैं। पिछले मत का एक अत्यंत कलापूर्ण मंदिर दयालबाग आगरा में निर्मित हो रहा है।

आर्यसमाज : आर्यसमाज के उद्भावक स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-83 ई०) ने मथुरा में काफी समय तक निवास किया। उनके गुरु स्वामी विरजानंदजी मथुरा के निवासी थे। स्वामी दयानंदजी ने आर्यसमाज की स्थापना कर भारतीय समाज और धार्मिक चिंतन को नया मोड़ दिया। मथुरा में भी आर्यसमाज की स्थापना हुई, जहां से 1883 ई० से 'मथुरा समाचार' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा। वृंदावन में गुरुकुल की स्थापना हुई। इन तथा ब्रजक्षेत्र की अन्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संबंधित संस्थाओं ने धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में उपयोगी कार्य किए और लोगों में जागरण की नई चेतना को जन्म दिया।

इस्लाम तथा ईसाई मतों को मानने वाले भी मथुरा में अच्छी संख्या में है। मथुरा में 1856 ई० में इंगलिश चर्च का तथा 1874 में कैथोलिक चर्च का निर्माण हुआ। दूसरे को मथुरा के तत्कालीन कलक्टर ग्राउज ने बनवाया। इसमें गाथिक तथा भारतीय स्थापत्य का अच्छा मिश्रण है।

आधुनिक प्रवृत्तियां : भारतीय जीवन का धार्मिक पहलू बीसवीं शती में बहुत कुछ बदल चुका है। परंतु मथुरा जैसे प्राचीन धार्मिक केंद्र में अब भी हमें पुरानी मान्यताओं के प्रत्यक्ष दर्शन मिलते हैं। ब्रजभूमि में सगुण भक्ति की व्यापकता का अनुमान वहां के वैष्णव मंदिरों में होनेवाले उत्सवों, त्योहारों, मेलों, वनयात्राओं आदि से लगाया जा सकता है। भगवान कृष्ण के मंदिरों की संख्या यहां सबसे अधिक है। श्रावण झूला, जन्माष्टमी, राधाअष्टमी, दीपावली, यमद्वितीया, होली, रथयात्रा, यमुनाषष्ठी प्रभृति त्योहारों पर मथुरा, वृंदावन, गोकुल, गोवर्धन, नंदगांव, बरसाना आदि के सुसज्जित मंदिरों में विविध उत्सव समारोहपूर्वक मनाए जाते हैं। भारत के विभिन्न प्रदेशवासियों के लिए ही नहीं, विदेशी लोगों के लिए भी ये आकर्षण के केंद्र हैं। आज भी यदि भगवान कृष्ण की भक्ति का जीता-जागता रूप देखना है तो इन मंदिरों में दर्शनार्थियों के समूह को देखा जाए। ब्रज के अनेक धार्मिक स्थलों पर होने वाली रासलीलाएं तथा अन्य उत्सव एवं मेले आज भी श्रीकृष्ण की लोकरंजिनी लीलाओं की मधुर स्मृति संजोए हुए हैं। यमुना नदी और उसका पवित्र कूल आज भी भावुक जनों के हृदयों में भक्तिभावना का संचार कर देता है।

ब्रज की वनयात्रा तथा परिक्रमाएं भी उल्लेखनीय हैं। 'ब्रज चौरासी कोस' की यात्रा सब में प्रमुख है। इस बड़ी यात्रा में ब्रज के सभी मुख्य वन-उपवन तथा अन्य धार्मिक स्थल आ जाते हैं। इस यात्रामार्ग में पड़ने वाले प्रमुख स्थान ये हैं : मथुरा, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, शांतनुकुंड, बहुलावन, अड़ींग, राधाकुंड, गोवर्धन, चंद्रसरोवर (परासौली), जतीपुरा, डीग, कामवन, बरसाना, संकेत, नंदगांव, करहला, चीरघाट, वत्सवन, गरुड़गोविंद, भांडीरवन, वृंदावन, मानसरोवर, लोहवन, बलदेव, ब्रह्मांडघाट, महावन, गोकुल और रावल। यह यात्रा भादों में प्रारंभ की जाती है। किसी किसी यात्रा में कई हजार व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। यात्रा में दर्शन, कथा कीर्तन, उपदेश, रासलीला आदि के आयोजन नित्य होते हैं। मथुरा, वृंदावन, बरसाना, गोवर्धन, कामवन आदि की अलग परिक्रमाएं भी होती हैं। गिरिराज गोवर्धन की बड़ी मान्यता है। कितने ही भक्त इसकी दंडवती परिक्रमा लगाते हैं। इन यात्राओं में ब्रज के मुख्य मंदिरों, वन-उपवनों, कुंजों, घाटों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार्यों की बैठकों, भक्तों की समाधियों आदि के दर्शन होते हैं। ब्रज के वर्तमान धार्मिक जीवन में इन यात्राओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

वर्तमान ब्रज में रामोपासना का उल्लेख करना भी आवश्यक है। भगवान राम के मंदिर ब्रज के प्रायः सभी स्थानों में विद्यमान हैं। उनकी पूजा-अर्चा में भक्ति और मर्यादा की भावना रहती है। रामलीला का यहां अच्छा प्रचार है। भरतपुर, मथुरा, आगरा आदि स्थानों में बड़े समारोह के साथ रामलीलाएं होती हैं और रामनवमी के उत्सव उत्साहपूर्वक मनाए जाते हैं। श्रीराम के अनन्य उपासक हनुमान की पूजा भी वर्तमान ब्रज में प्रचलित है।

ब्रजभूमि में उच्चकोटि के विद्वान महात्मा होते आए हैं। आधुनिक काल में भी ब्रज को ग्वारिया बाबा, उड़िया बाबा, अवधदास, हंसदास, रामकृष्णदास, हाथीबाबा, हरिबाबा, माता आनंदमयी, अखंडानंद सरस्वती आदि ऊंचे संत-महात्माओं के होने का गौरव प्राप्त है।

संदर्भ

1. विस्तार के लिए द्रष्टव्य ब्रज का इतिहास (संपा० कृष्णदत्त वाजपेयी) खंड 2, मथुरा 19.
2. देखिए रिज डेविड्स : 'बुस्धिट इंडिया', कलकत्ता, 1950, पृ० 143-44.
3. 'ब्रज का इतिहास', प्रथम खंड, पृ०65-7.
4. देखिए : कृष्णदत्त वाजपेयी : 'प्राचीन मथुरा में यज्ञ', ब्रजभारती वर्ष 13 अंक 2, पृ० 37-41.
5. इसका नाम 'वेरंज' भी मिलता है. यह स्थान मथुरा नगर के पश्चिम में कुछ दूर पर स्थित प्रतीत होता है.
6. वाटर्स : 'आन युवान च्वांग', जिल्द 1, पृ० 267.
7. यह गोवर्धन पर्वत होगा, जहां प्राचीन बौद्ध कलावशेष मिलते हैं. बौद्ध ग्रंथों में जिस रुरुमुंड या उरुमुंड पर्वत का उल्लेख मिलता है वह भी संभवतः गोवर्धन ही था.
8. 'दिव्यावदान', कावेल का संस्करण; कैंब्रिज, 1886, पृ० 348-49.
9. 'ब्रज का इतिहास', प्रथम खंड, पृ० 81-82.
10. मथुरा, सारनाथ और श्रावस्ती में 'बोधिसत्व' की विशालकाय प्रतिमाएं सर्वास्तिवादी बौद्ध भिक्षु बल के नामोल्लेख सहित प्राप्त हुई हैं.
11. 'कोश व्याख्या' (जापानी संस्करण), पृ० 470.
12. देखिए : तलिनाक्षदत्त तथा कृष्णदत्त वाजपेयी : 'उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास', लखनऊ, 1956, पृ० 208-220.
13. विस्तृत दार्शनिक विवेचन के लिए देखिए : वही, पृ० 213-32.
14. देखिए 'उत्तरप्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास', पृ० 11-13, 208, 235.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

15. द्रष्टव्य डा० ज्योतिप्रसाद जैन : 'मथुरा में जैन धर्म का उदय और विकास', ब्रजभारती, वर्ष 15, अंक 2, पृ० 1-5.
16. बौद्ध स्तूप का उल्लेख करने वाले प्रसिद्ध शिलापट्ट पर मुनि सुव्रतनाथ का नाम मिला है. ब्यूलर, स्मिथ आदि विद्वानों ने इस नाम को भूल से अरनाथ पढ़ा था.
17. श्वेतांबर अनुश्रुति के अनुसार यह बात दक्षिण के रहवीरपुर स्थान में 82 ई० में घटित हुई.
18. दिनेशचन्द्र सरकार : 'सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस,' कलकत्ता, 1942, पृ० 91-92. नानाघाट के ई० पूर्व प्रथम शती के अभिलेख में भी अन्य देवों के साथ सकर्षण-वासुदेव का नाम मिलता है. देखिए आर० जी० भंडारकर : 'वैष्णविज्म, शविज्म ऐंड माइनर रिलीजस सिस्टम्स', पूना, 1928, पृ० 3-5.
19. देखिए डा० फोगल का लेख : 'गरुड़ पिलर आफ बेसनगर' 'आर्केलाजिकल सर्वे आफ इंडिया', 1908-9, पृ० 126-29.
20. यह अब लखनऊ संग्रहालय में है (सं० जी० 235).
21. यह ई० दूसरी शती की मूर्ति मथुरा संग्रहालय (संख्या 1348) में है.
22. 'ब्रज का इतिहास', प्रथम खंड, पृ० 70.
23. पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में भी वासुदेवभक्ति का संकेत है. देखिए, 'इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली', भाग 2, पृ० 409 से.
24. गुप्तकाल में ब्रज में भगवान विष्णु, कृष्ण, बलराम आदि की अनेक कलापूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण हुआ. मथुरा और लखनऊ संग्रहालयों में ऐसी कई उत्कृष्ट मूर्तियां हैं. रूपवास (भरतपुर राज्य) में विष्णु, बलराम आदि की विशाल प्रतिमाएं हैं, जिनमें गुप्तकाल की सभी विशेषताएं हैं. (देखिए कनिंघम : 'आ० स० रि०', भाग 2, पृ० 88; कुमारस्वामी; 'हिस्ट्री आफ इंडियन ऐंड इंडोनेशियन आर्ट', पृ० 86-87). कामवन में वराह तथा विश्वरूप विष्णु की कई सुंदर मूर्तियां मिली हैं, जो गुप्त एवं पूर्वमध्यकाल की हैं.
25. मथुरा संग्रहालय, संख्या 1931, क्यू० 5, तथा 3835.
26. इस लेख की पंक्ति 30 इस प्रकार है : 'तयैतत्कारितं चित्रं चित्रकर्म्मोज्ज्वलं महत्।' (देखिए : भगवानलाल इंद्रजी, इंडियन ऐंटिक्वेरी, जिल्द 10, पृ० 34, कनिंघम, सर्वे-रिपोर्ट, जि० 10, पृ० 57-60).
27. श्रीचैतन्य चरितामृत के अनुसार महाप्रभुजी ने मथुरा में जन्म-स्थान पर केशवप्रतिमा के दर्शन किए.
28. वृंदावन में श्रीरंगजी के मंदिर के पास समाधि उद्यान में गौड़ीय संप्रदाय के प्रायः सभी प्रमुख महानुभावों के नामांकित समाधि प्रस्तर विद्यमान हैं. श्रीराधा-दामोदर मंदिर में श्री रूप, जीव एवं कृष्णदास कविराज की समाधियां तथा प्राचीन मदनमोहन मंदिर के समीप सनातन गोस्वामी की समाधि है. नारायण भट्ट की समाधि ऊंचागांव के पास है.
29. बलदेव उपाध्याय : 'भागवत सम्प्रदाय', पृ० 312.
30. 'भागवत सम्प्रदाय', पृ० 351.
31. देखिए 'स्वामी हरिदास अभिनन्दन-ग्रंथ', वृंदावन, सं० 2014, पृ० 20-23, 46-50, 109-118.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

32. देखिए : कृष्णदत्त वाजपेयी : 'ब्रजभाषा का पत्र-विषयक गद्य-साहित्य', ब्रजभारती, वर्ष 12, अंक 4.

33. इस मंदिर की बाहरी दीवारों की लंबाई-चौड़ाई क्रमश: लगभग 250 और 140 मीटर है. देखिए : ग्राउज : 'मथुरा मेम्बायर', द्वि० संस्करण, पृ०240.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

17

प्राचीन तथा अर्वाचीन यात्रियों के विवरण

प्राचीन व्रज जनपद तथा उसके मुख्य नगर मथुरा के रोचक वर्णन यहां की यात्रा करने वाले अनेक विदेशी यात्रियों ने किए हैं। इनमें यूनानी, रोमन, चीनी, अफगान, फ्रांसीसी तथा अंगरेज मुख्य हैं। इन्होंने मथुरा के विषय में जो कुछ लिखा है उससे इस नगर के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण एवं मनोरंजक बातों का पता चलता है।

मथुरा संबंधी सबसे पुराने लेख यूनानी लेखकों के हैं। ईसवी पूर्व चौथी शती के अंत में मेगस्थनीज नामक यात्री चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में पाटलीपुत्र (पटना) आया था। उसने भारत के संबंध में कितनी ही बातें लिखी हैं। उनमें शूरसेन प्रदेश का भी उल्लेख आया है। ईसवी दूसरी शती के लेखक 'एरियन' ने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में मेगस्थनीज के इस उल्लेख की चर्चा की है। इस ग्रंथ में लिखा है :

> शौरसेनाइ लोग 'हेराक्लीज' को बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। शौरसेनाइ लोगों के दो बड़े नगर हैं—मेथोरा और क्लीसोबोरा। उनके राज्य में जाबरस नदी बहती है, जिसमें नावें चल सकती हैं।

प्लिनी नामक एक दूसरे यूनानी लेखक ने लिखा है : 'जोमनेस नदी मेथोरा और क्लीसोबोरा के बीच से बहती है।'

इस लेख का भी आधार मेगस्थनीज का लेख है।

टालमी नामक लेखक ने मथुरा का नाम 'मोदुरा' दिया है और मथुरा को 'देवताओं का नगर' कहा है।

इन इतिहासकारों के वर्णनों पर विचार करने से पता चलता है कि मेगस्थनीज के समय में व्रज शूरसेन कहाता था और उसके निवासी शौरसेन। हेराक्लीज से यहां तात्पर्य श्रीकृष्ण से है। ई० पू० चौथी शती में शूरसेन जनपद के सात्वत लोग श्रीकृष्ण को यदि देवरूप में नहीं तो महापुरुष के रूप में अवश्य मानते रहे होंगे और उनके प्रति बड़े आदर का भाव रखते रहे होंगे।

शौरसेन लोगों के जिन दो बड़े नगरों का उल्लेख किया गया है उनमें पहला स्पष्ट ही मथुरा है। दूसरा क्लीसोबोरा कौनसा नगर था, यह विवादास्पद है। यह शब्द 'केशवपुरा' का यूनानी रूप है। मथुरा का वर्तमान केशवपुरा क्षेत्र पहले मथुरा से भिन्न एक लघु नगर के रूप में मान्य रहा होगा। जनरल कनिंघम ने अपना भारतीय भूगोल लिखते समय यह स्थापना की थी कि क्लीसोबोरा वृंदावन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसकी पुष्टि में उन्होंने लिखा है कि कालिक नाग के वृंदावन में रहने के कारण इस नगर का नाम 'कालिकावर्त' हुआ। यूनानी लेखकों के क्लीसोबोरा का शुद्ध पाठ वे कालिसोबोर्क या कालिकोबोर्त समझते हैं। उन्हें इंडिका की एक पुरानी प्रति में 'काइरिसोबोर्क' पाठ मिला, जिससे उन्हें इस अनुमान को बल मिला। परंतु कनिंघम का यह अनुमान ठीक नहीं है। वृंदावन में रहने वाले नाग का नाम, जिसका श्रीकृष्ण ने दमन किया कालिय मिलता है, न कि कालिक। पुराणों या अन्य किसी साहित्य में वृंदावन की संज्ञा कालियावर्त या कालिकावर्त मिल सके, इसमें भी संदेह है। यदि हम क्लीसोबोरा को वर्तमान वृंदावन मानें तो 'प्लिनी' का यह लिखना कि मथुरा और क्लीसोबोरा के बीच से यमुना नदी बहती थी, असंगत सिद्ध होगा, क्योंकि वृंदावन और मथुरा दोनों ही यमुना नदी के एक ही ओर स्थित हैं।

कनिंघम ने अपनी 1882-83 ई० की रिपोर्ट में क्लीसोबोरा के संबंध में अपना उपर्युक्त मत बदल कर इस शब्द का मूल रूप 'केशवपुरा' माना और उसकी पहचान उन्होंने मथुरा के केशवपुरा या कटरा केशवदेव मुहल्ले से की। केशव या श्रीकृष्ण का जन्म स्थान यहां होने के कारण यह स्थान केशवपुरा कहलाया। कनिंघम का कहना है कि यूनानी लेखकों के समय में यमुना की प्रधान धारा या उसकी एक बड़ी शाखा वर्तमान कटरा केशवदेव की पूर्वी दीवार के नीचे से बहती रही होगी। और उसके दूसरी ओर मथुरा शहर रहा होगा। उन्होंने इस दीवार के नीचे की आधुनिक निचली भूमि की ओर संकेत किया है, जो उत्तर में सीधी 'संगम तीर्थ घाट' तक दिखाई पड़ती है। उन्होंने लिखा है कि यह उस प्राचीन धारा की सूचिका है जो प्राचीन काल में इधर से बहती थी और कटरा के कुछ आगे से दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर यमुना की वर्तमान बड़ी धारा में मिलती रही होगी। जनरल कनिंघम का यह मत भी विचारणीय है।

यूनानियों के बाद चीनी यात्रियों द्वारा मथुरा का वर्णन मिलता है। इन यात्रियों में 'फाह्यान' तथा 'हुएन-सांग' बहुत प्रसिद्ध है। फाह्यान पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत पहुंचा। वह 400 ई० के लगभग मथुरा नगर आया और यहां लगभग एक मास तक रहा। उसने लिखा है :

> यहां के छोटे-बड़े लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। शाक्यमुनि बुद्ध के समय से यहां के निवासी इस धर्म का पालन करते आ रहे हैं। 'माटुलो' अर्थात मथुरा नगर तथा उसके आसपास पूना (यमुना) नदी के दोनों ओर 20 संघाराम या बौद्धमठ हैं, जिनमें लगभग 300 भिक्षु निवास करते हैं। छः बौद्ध स्तूप भी हैं। सारिपुत्र के सम्मान में बना हुआ स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। दूसरा स्तूप आनंद के सम्मान में तथा तीसरा मुद्गलपुत्र की याद में बनाया गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। शेष तीनों क्रमशः अभिधर्म, सूत्र और विनय के लिए निर्मित किए गए हैं। जो बौद्धधर्म के तीन अंग या त्रिपिटक हैं।

फाह्यान के इस विवरण से पता चलता है कि उसके समय में मथुरा में बौद्धधर्म उन्नति पर था, यद्यपि उसका यह कहना ठीक नहीं मालूम देता कि शाक्यमुनि के बाद से यहां लोग इस धर्म का पालन करते आ रहे थे। भगवान बुद्ध के बाद मथुरा में वैदिक धर्म जोर पर था, न कि बौद्धधर्म। फाह्यान ने जिन बौद्ध संघारामों का उल्लेख किया है, वे वर्तमान मथुरा नगर के दोनों ओर काफी दूर तक फैले रहे होंगे। ग्राउस नामक विद्वान का अनुमान है कि इनमें से कुछ स्तूप वर्तमान महावन तक विद्यमान रहे होंगे।

फाह्यान के बाद सन 635 के लगभग 'हुएन-सांग' नामक दूसरा चीनी पर्यटक मथुरा राज्य में आया। उसने राज्य का विस्तार 5000 ली (लगभग 1230 कि० मी०) तथा उसकी राजधानी मथुरा नगर का विस्तार (लगभग 5 कि० मी०) लिखा है। यहां की भूमि की बावत उसने लिखा है :

> वह अच्छी और उपजाऊ है। यहां आम बहुत पैदा होता है, जो छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार वाला आम छुटपन में हरा रहता है और पकने पर पीला हो जाता है। बड़ी किस्म वाला आम सदा हरा रहता है। इस राज्य में उत्तम कपास और पीला सोना उत्पन्न होता है।

यहां के निवासियों के विषय में उसने लिखा है :

> उनका स्वभाव कोमल है और वे दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। ये लोग तत्वज्ञान का गुप्त रूप से अध्ययन करना पसंद करते हैं। ये परोपकारी हैं और विद्या के प्रति बड़े सम्मान का भाव रखते हैं।

मथुरा की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का परिचय हुएन-सांग ने इस प्रकार दिया है :

> इस नगर में लगभग 20 संघाराम हैं, जिनमें 2,000 भिक्षु रहते हैं। इन भिक्षुओं में 'हीनयान' और 'महायान'—इन दोनों मतों के मानने वाले हैं। यहां पांच देव मंदिर भी हैं, जिनमें बहुत से साधू पूजा करते हैं। राजा अशोक के बनाए हुए तीन स्तूप यहां विद्यमान हैं। विगत चारों बुद्धों के भी अनेक चिह्न यहां दिखाई देते हैं। तथागत भगवान के साथियों के पवित्र अवशेषों पर भी स्मारक रूप में कई स्तूप बने हुए हैं।...विभिन्न धार्मिक अवसरों पर संन्यासी लोग बड़ी संख्या में इन स्तूपों का दर्शन करने आते हैं और बहुमूल्य वस्तुएं भेंट में चढ़ाते हैं। ये लोग अपने अपने संप्रदाय के अनुसार अलग अलग पवित्र स्थानों का दर्शन-पूजन करते हैं।

विशेष अवसरों पर झंडे और बहुमूल्य छत्र चारों ओर प्रदर्शित किए जाते हैं। सुगंधित पदार्थों का धुआं बादलों के समान छा जाता है और सब ओर से फूलों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृष्टि होने लगती है। सूर्य और चंद्रमा बिलकुल छिप जाते हैं और पहाड़ों की घाटियां तुमुल घोष से निनादित हो उठती हैं। देश का राजा तथा उसके मंत्री लोग भी बड़े उत्साह के साथ धार्मिक कार्यों को करते हैं।

हुएन-सांग के वर्णन से कई बातों का पता चलता है। उसके समय में मथुरा राज्य का विस्तार अधिक था। कनिंघम का अनुमान है कि तत्कालीन मथुरा राज्य में वर्तमान बैराट और अतरंजी-खेड़ा के बीच का सारा प्रदेश ही नहीं अपितु आगरा के दक्षिण में 'नरवर' और 'शिवपुरी' तक का तथा पूर्व में 'कालीसिंध' नदी तक का भू भाग रहा होगा। इस प्रकार इस राज्य में मथुरा, आगरा, जिलों के अतिरिक्त भरतपुर, करौली और धौलपुर तथा ग्वालियर राज्य का उत्तरी आधा भाग शामिल रहा होगा। पूर्व में मथुरा राज्य की सीमा 'जिझौती' से तथा दक्षिण में 'मालवा' की सीमा से मिलती रही होगी।

इस यात्री के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि ईसवी सातवीं शती में मथुरा की भूमि अधिक उपजाऊ थी। वर्तमान समय में यहां आम के फल नाममात्र को होते हैं और कपास की उपज भी बहुत कम होती है। संभव है कि अब 1300 वर्ष पहले यहां इन वस्तुओं की तथा अन्न की पैदावार अधिक होती रही हो। परंतु हुएन-सांग ने सोने की उत्पत्ति के बारे में जो लिखा है, वह बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। वस्तुत मथुरा की जमीन में कहीं भी सोना नहीं निकलता।

हुएन-सांग का वर्णन मथुरा की धार्मिक स्थिति का अच्छा दिग्दर्शन कराता है। सातवीं शती के पूर्वार्ध में भी वहां बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार था, पर फाह्यान के समय को देखते हुए अब वहां के बौद्ध मतावलंबियों की संख्या में कमी आ गई थी। फाह्यान ने मथुरा के बीस बौद्ध संघारामों का उल्लेख किया, जिनमें लगभग 3,000 बौद्ध संन्यासी रहते थे। हुएन-सांग के समय वहां संघारामों की संख्या तो उतनी ही रही, पर बौद्ध संन्यासियों की संख्या घटकर 2,000 के ही लगभग रह गई। मथुरा में बौद्ध धर्म की क्रमशः अवनति का प्रधान कारण यही प्रतीत होता है कि हिंदू धर्म की यहां उन्नति हो रही थी। हुएन-सांग ने मथुरा के पांच बड़े हिंदू मंदिरों का उल्लेख किया है, जिनमें बहुत से पुजारी थे।

चीनी यात्रियों के अनंतर मुसलमान यात्रियों ने भी मथुरा का वर्णन किया है। इनमें सबसे पहला लेखक 'अल-उत्बी' ज्ञात होता है। यह महमूद गजनवी का मंत्री था। इसने अपनी किताब 'तारीखे यामिनी' में महमूद के द्वारा 1017 में भारत पर किए गए नवें हमले का वर्णन करते हुए मथुरा की चर्चा की है। उत्वी ने मथुरा को एक स्थान पर 'महरतुलहिंद' लिखा है। उसने लिखा है :

> महावन में उस समय कूलचंद नामक राजा का किला था। यह राजा बड़ा शक्तिशाली था और उससे कोई विजय नहीं प्राप्त कर सका था। उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य बहुत बड़ा था, वह अपार धन तथा एक बड़ी सेना का स्वामी था। और उसके सुदृढ़ किले को कोई भी दुश्मन नहीं ढहा सका था। जब उसने सुलतान (महमूद) की चढ़ाई की बावत जाना तो अपनी फौज इकठ्ठी करके मुकाबले के लिए तैयार हो गया, परंतु उसकी सेना शत्रु को हटाने में असफल रही।

इसके बाद सुलतान महमूद की फौज मथुरा पहुंची। यहां का वर्णन करते हुए उत्वी लिखता है :

इस शहर में सुलतान ने निहायत उम्दा ढंग की बनी हुई एक इमारत देखी, जिसे स्थानीय लोगों ने मनुष्यों की रचना न बताकर देवताओं की कृति बताई। नगर का परकोटा पत्थर का बना हुआ था, उसमें नदी की ओर ऊंचे तथा मजबूत आधार स्तंभों पर बने हुए दो दरवाजे थे। शहर के दोनों ओर हजारों मकान बने हुए थे, जिनसे लगे हुए देवमंदिर थे। ये सब पत्थर के बने थे और लोहे की छड़ों द्वारा मजबूत कर दिए गए थे। उनके सामने दूसरी इमारतें बनी थीं, जो सुदृढ़ लकड़ी के खंभों पर आधारित थीं। शहर के बीच में सभी मंदिरों से ऊंचा एवं सुंदर एक मंदिर था, जिसका पूरा वर्णन न तो चित्र-रचना द्वारा और न लेखनी द्वारा किया जा सकता है। सुलतान महमूद ने स्वयं उस मंदिर के बारे में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार की इमारत बनवाना चाहे तो उसे दस करोड़ सोने के दीनारों से कम न खर्च करने पड़ेंगे और उसके निर्माण में 200 वर्ष लगेंगे, चाहे उसमें बहुत ही योग्य तथा अनुभवी कारीगरों को ही क्यों न लगा दिया जाए। सुलतान ने आज्ञा दी कि सभी मंदिरों को जलाकर उन्हें धराशायी कर दिया जाए। बीस दिनों तक बराबर शहर की लूट होती रही। सोने-चांदी की बहुमूल्य मूर्तियों तथा अन्य मूल्यवान वस्तुओं को सौ ऊंटों पर लादकर गजनी ले जाया गया।

महमूद के आक्रमण के कुछ समय बाद ही अलबेरूनी नामक प्रसिद्ध अरब पर्यटक भारत आया। उसने यहां संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और भारत में कुछ दिन ठहरने के बाद उसने इस देश के संबंध में 1030 ई० में 'तहफीके हिंद' नामक बड़ी पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उसने भारतीय इतिहास, साहित्य, दर्शन ज्योतिष आदि के संबंध में तथा यहां के लोगों के विषय में विस्तृत विवरण दिया है। अपने इस ग्रंथ में अलबेरूनी 'वायुपुराण', 'बृहत्संहिता' आदि ग्रंथों की भौगोलिक सूचियों के आधार पर शूरसेन तथा मथुरा का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि मथुरा नगर यमुनातट पर बसा है। भगवान वासुदेव (कृष्ण) के मथुरा में जन्म का तथा उनके चरित का वर्णन अलबेरूनी ने विस्तार से किया है।

अन्य कई मुसलमान लेखकों ने भी मथुरा की चर्चा की है। इनमें से विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेखनीय । 6वीं शताब्दी के अलबदाऊनी तथा मोहम्मद कासिम फरिश्ता के विवरण हैं। पहले लेखक ने अपनी किताब 'मुंतखबुत्तवारीख' में मथुरा का जिक्र करते हुए लिखा है :

> मथुरा काफिरों की पूजा की जगह है। यहां वसुदेव के लड़के कृष्ण पैदा हुए। यहां पर असंख्य देवमंदिर हैं। सुलतान (महमूद गजनवी) ने मथुरा को फतह किया और उसे बरबाद कर डाला। मुसलमानों के हाथ बड़ी दौलत लगी। सुलतान की आज्ञा से इन्होंने एक देवमूर्ति को तोड़ा, जिसका वजन 98,300 मिश्कल खरा सोना था। एक बेशकीमती पत्थर मिला, जो तौल में 450 मिश्कल था। इन सबके अतिरिक्त एक बड़ा हाथी मिला, जो पहाड़ के मानिंद था। यह हाथी राजा गोविंद चंद का था।

1600 ई० के लगभग फरिश्ता ने भारत का विस्तृत वर्णन लिखा। मथुरा के संबंध में उसने कई उल्लेख किए हैं। महमूद गजनवी की चढ़ाई का वर्णन करते हुए उसने लिखा है कि महमूद मेरठ से महावन पहुंचा था। महावन को लूटने के बाद वह मथुरा पहुंचा। फरिश्ता लिखता है :

> सुलतान ने मथुरा में मूर्तियों को भग्न करवाया और बहुत सा सोना-चांदी प्राप्त किया। वह मंदिरों को भी तोड़ना चाहता था, पर उसने यह देखकर कि यह काम श्रमसाध्य है, अपना विचार बदल दिया। कुछ लोगों का अनुमान है कि मंदिरों के सौंदर्य से प्रभावित होकर सुलतान ने उन्हें नष्ट करने का ख्याल छोड़ दिया। उसने गजनी के गवर्नर को मथुरा की बाबत जो लिखा उससे प्रमाणित होता है कि इस शहर तथा यहां की इमारतों का उसके चित्त पर बड़ा असर पड़ा। सुलतान मथुरा में बीस दिन तक ठहरा। इस अवधि में शहर की बड़ी बरबादी की गई।

फरिश्ता ने सिकंदर लोदी के द्वारा भी मथुरा की बरबादी का हाल लिखा है :

> सिकंदर ने मंदिरों और घाटों को बरबाद कर उनके स्थान पर मस्जिदें खड़ी कीं और आज्ञा दी कि घाटों पर कोई भी हिंदू स्नान न करने आए तथा कोई भी नाई उनकी हजामत न बनाए।

हिंदू यात्री मथुरा आने पर नियमानुसार घाटों पर क्षौरकर्म करवाते थे। सिकंदर के हुक्म से यह प्रथा बंद करवा दी गई।

मुसलमान लेखकों के विवरणों के बाद अब हम यूरोपीय यात्रियों के मथुरा संबंधी वर्णनों की चर्चा करेंगे। मुगलकाल का सबसे पहला यूरोपीय यात्री जिसने मथुरा जिले का कुछ भाग देखा 'जान द लाएट' था। इसने अपनी पुस्तक 'इंडिया वेरा' में मथुरा जिले का मामूली वर्णन किया है। दोतना गांव (छाता और कोसी के बीच) की बाबत उसने लिखा है कि वहां बहुत से मुसलमान पीरों की कब्रें हैं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके दर्शन के लिए बहुत से यात्री आते हैं।

1650 ई० के लगभग फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर मथुरा आया। उसने श्रीकृष्ण जन्मस्थान पर बने हुए केशवराय (केशवदेव) मंदिर को देखा जो कोई 35 साल पहले ओड़छा के राजा वीरसिंहदेव के द्वारा प्रभूत धन से बनवाया गया था। टैवर्नियर ने इस प्रसिद्ध मंदिर का विस्तृत वर्णन किया है; जो इस प्रकार है :

> जगन्नाथ और बनारस के मंदिरों के बाद मथुरा का मंदिर सबसे अधिक विख्यात है। यह आगरा से लगभग 18 कोस की दूरी पर दिल्ली जाने वाली सड़क पर स्थित है। यह मंदिर भारत भर में अत्यंत उत्कृष्ट मंदिरों में से एक है। किसी समय इस स्थान में सबसे अधिक यात्री आते थे, पर अब उनकी संख्या कम हो गई है। इसका कारण यह है कि पहले यमुना नदी मंदिर के बिलकुल समीप बहती थी, परंतु अब उसकी धारा लगभग आधा कोस दूर हट गई है। यमुना में स्नान करने के अनंतर मंदिर तक पहुंचने में यात्रियों को अब काफी समय लग जाता है और रास्ते में उन्हें अपवित्र हो जाने का डर रहता है।
>
> यह मंदिर इतना विशाल है कि यद्यपि वह नीची जगह पर स्थित है तो भी 5-6 कोस की दूरी से दिखाई पड़ता है। मंदिर की इमारत बहुत ही ऊंची एवं भव्य है। उसमें जो पत्थर इस्तेमाल किया गया है वह लाल रंग का है और आगरा के समीप एक बड़ी खान से लाया गया है।

टवर्नियर को पुजारियों ने मंदिर के अंदर जाने दिया, मंदिर में प्रवेश होते समय का वर्णन टैवर्नियर ने इस प्रकार किया है :

> दरवाजे से मैंने भीतर की ओर देखा कि कोई 15-16 फुट की दूरी पर एक चौकोर आधार है, जिसपर सोने-चांदी के काम वाला पुराना वस्त्र बिछा था और उसके ऊपर बड़ी मूर्ति है, जिसे 'राम राम' कहते हैं। इस मूर्ति का केवल सिर दिखाई पड़ता था, जो बड़े काले संगमरमर से बना था और जिसमें आंखों की जगह दो लाल मणियां जड़ी हुई थीं। गरदन से लेकर पैरों तक मूर्ति का सारा शरीर कढ़े हुए लाल मखमली कपड़े से ढका था। मूर्ति के हाथ नहीं दिखाई पड़ते थे। बड़ी मूर्ति के दोनों ओर एक एक और मूर्ति थी, जो ऊंचाई में लगभग 2 फुट की थी। उनकी बनावट बड़ी मूर्ति जैसी ही थी, केवल भेद इतना था कि उन दोनों के चेहरे सफेद थे। इन दोनों मूर्तियों को 'बेच्छोर' कहते थे।

पर्यटक आगे लिखता है :

> मैंने मंदिर में 15-16 फुट की एक चौकोर वस्तु और देखी जो ऊंचाई में 12 से 15 फुट तक होगी। यह एक रंगीन वस्त्र से ढकी थी, जिस पर सभी प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के दानवों के चित्र बने थे। उसे चार छोटे पहियों के ऊपर खड़ा किया गया था। लोगों ने मुझे बताया कि यह चल सकने वाली वस्तु है जिस पर बड़े पर्वों के अवसरों पर बड़े देवता को सवार कराते हैं और उसे अन्य देवताओं से मिलाने के लिए ले जाते हैं। मुख्य उत्सवों पर इसे मूर्ति सहित लोगों के समुदाय के साथ साथ नदी तक ले जाते हैं।

टैवर्नियर का यह वर्णन तत्कालीन मथुरा के सर्वोत्तम मंदिर का एक भव्य स्वरूप सामने खड़ा कर देता है। इस यात्री के लगभग 13 वर्ष बाद 1663 ई० में बर्नियर नामक दूसरे यात्री ने भी इस विशाल मंदिर का उल्लेख किया है। वह लिखता है :

दिल्ली और आगरा के बीच में जिसका फासला 50 या 60 मील होगा, कोई अच्छा नगर नहीं है। यह सारी सड़क उल्लास-रहित एवं नीरस है। केवल मथुरा ही एक उल्लेखनीय स्थान है जहां अब भी एक प्राचीन एवं विशाल देवमंदिर दिखाई पड़ता है।

बर्नियर के इस लेख के कोई 6 वर्ष बाद ही यह देवमंदिर औरंगजेब की कट्टरता का शिकार बन गया।

1743 ई० में जासेफ टीफेथैलर नामक फ्रांसीसी यात्री भारत आया और यहां लगभग 42 वर्ष तक रहा। वह मथुरा भी गया और वहां के अनेक स्थानों का उसने वर्णन किया। गोकुल की बाबत वह लिखता है : 'यहां की स्त्रियों की शादी यहीं हो जाती है, बाहर नहीं की जाती।'

शायद उसने भूल से मथुरा के स्थान पर गोकुल लिख दिया है। पर हो सकता है कि अब से लगभग दो सौ वर्ष पहले गोकुल में भी यह प्रथा रही हो जो अब तक मथुरा के चौबों में चली आती है। मथुरा नगर का वर्णन करते हुए यह यात्री लिखता है :

यहां की गलियां संकरी और गंदी हैं और शहर की अधिकांश इमारतें टूटी-फूटी हैं। किला बहुत बड़ा और विशाल है, मानो कामदार पत्थरों का पर्वत हो। उस पर एक वेधशाला है, जो जयपुर की वेधशाला की एक छोटी प्रतिकृति है, पर इनमें एक खूबी यह है कि यह बहुत ऊंचाई पर स्थित है।

इस यात्री ने मथुरा के विश्रांतघाट की भी प्रशंसा की है। वृंदावन की बाबत टीफेलैथर लिखता है :

इस नगर में केवल एक बड़ी सड़क है, जिसके दोनों ओर सुंदरता के साथ उकेरे हुए पत्थरों की बढ़िया इमारतें हैं। ये हिंदू राजाओं तथा सरदारों के द्वारा या तो शोभा के लिए, या कभी कभी निवास करने या धार्मिक प्रयोजन के लिए बनवाई गई थीं।

इस यात्री को वृंदावन की धार्मिकता अच्छी नहीं लगी और उसने यहां धर्मार्थ आने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले यात्रियों की तीखी एवं कटु आलोचना की है।

19वीं शताब्दी में अनेक यूरोपीय यात्रियों ने मथुरा आने पर यहां का थोड़ा-बहुत वर्णन किया है। इनमें से विशप हेबर तथा विक्टर जैकेमांट नामक दो यात्रियों के वर्णन विशेष रोचक हैं। हेबर 1825 ई० में मथुरा पहुंचा। उसने मथुरा के प्रसिद्ध द्वारकाधीश मंदिर का मनोरंजक वर्णन किया है। वह लिखता है :

> शहर के लगभग बीचो बीच एक सुंदर मंदिर है, जो आवास स्थान का भी काम देता है। यह मंदिर हाल में ही बना है और अभी तक पूर्ण नहीं हुआ। सिंधिया के कोषाध्यक्ष गोकुलपतिसिंह ने इसे बनवाया है। इमारत का दरवाजा यद्यपि छोटा है पर बहुत अलंकृत है। उसमें पहुंचने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। सड़क से सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद चौकोर आंगन मिलता है जो चारों ओर से घिरा हुआ है। आंगन के बीच में एक चौकोर इमारत है, जो खंभों की तिहरी पंक्ति पर बनी है। खंभे तथा छत बड़ी सुंदरता के साथ उत्कीर्ण एवं चित्रित हैं। बाहर की ओर का बना पत्थर का कटाव अत्यंत सुंदर है···।

हेबर ने अपने लेख में दोतना गांव का तथा सिर पर घड़ा रखकर नाचने वाली ग्वालिनों का भी उल्लेख किया है।

जैकेमांट 1829-30 ई० में ब्रज आया था। उसने इस प्रदेश का वर्णन करते हुए लिखा है :

> यहां की जमीन रेतीली है। खेती के योग्य जो जमीन है उसके आस-पास ऊसर भी बहुत है। यमुना नदी में कोई आकर्षण नहीं है। यहां के गांव एक दूसरे से काफी दूर बसे हैं। उनकी हालत बिगड़ती जा रही है। बहुत से गांवों के चारों ओर मजबूत दीवालें हैं।

द्वारकाधीश मंदिर के संबंध में यह यात्री लिखता है कि 'वह ऐसा लगता था मानो एक बैरक हो अथवा रुई का कारखाना हो।' वृंदावन के संबंध में इस यात्री ने लिखा है :

> यह बहुत ही प्राचीन शहर है और मथुरा से भी अधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। हिंदुओं के जितने बड़े पवित्र तीर्थ हैं उनमें से यह एक है। यहां के मंदिरों में बड़ी संख्या में यात्री आते हैं और नदी के किनारे सुंदर घाटों में पूजा करते हैं। सभी इमारतें लाल पत्थर की बनी हैं जो आगरा के पत्थर से उम्दा हैं। वृंदावन में मुझे एक भी मस्जिद नहीं दिखाई दी। नगर के छोरों पर अच्छे पेड़ों के घने कुंज हैं, जो बहुत ही सुंदर लगते हैं।

विभिन्न युगों में मथुरा का भ्रमण करने वाले तथा इस क्षेत्र के संबंध में विचार व्यक्त करने वाले विदेशी यात्रियों के ये विवरण रोचक होने के साथ ज्ञानवर्धक हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

18
वर्तमान मथुरा

वर्तमान मथुरा शहर उत्तर प्रदेश के धुर पश्चिमी भाग में स्थित मथुरा जिले का प्रधान नगर है। अब भारत के किसी भी स्थान से मथुरा आसानी के साथ पहुंचा जा सकता है। दिल्ली के पूर्व-दक्षिण की ओर जाने वाली पश्चिम तथा मध्य रेलवे की बड़ी लाइनें मथुरा होकर गुजरती हैं। भारत के उत्तरी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों से इन्हीं मार्गों से रेल द्वारा मथुरा पहुंचना सुविधाजनक है। पूर्व तथा दक्षिण पूर्व भारत की ओर से मथुरा पहुंचने के लिए दो मार्ग हैं: पहला पूर्व रेलवे की बड़ी लाइन पर स्थित टूंडला से आगरा होकर, और दूसरा उसी लाइन के हाथरस जंक्शन स्टेशन होकर। कानपुर से पूर्वोत्तर रेलवे द्वारा सीधे भी मथुरा पहुंच सकते हैं। मथुरा शहर में तीन रेलवे स्टेशन हैं—मथुरा जंक्शन, मथुरा छावनी तथा भूतेश्वर। रेल के अलावा बस द्वारा भी मथुरा पहुंचा जा सकता है। अब मथुरा के प्रायः सभी निकटवर्ती शहरों से यहां तक सरकारी बसें भी आने-जाने लगी हैं।

मथुरा नगर हिंदुओं की पवित्र यमुना नदी के तट पर बसा है। केवल ग्रीष्म में कुछ दिन नदी की धारा के बीच रेती निकल आती है, अन्य ऋतुओं में धारा बिलकुल शहर के समीप से बहती है। यमुना का बहाव शहर के लगभग आधी दूर तक दक्षिण की ओर है और उसके बाद पूर्व की ओर। नदी की परली पार से मथुरा का दृश्य मनोहर लगता है। कभी कभी मथुरा को यमुना की भीषण बाढ़ का सामना करना पड़ता है।

नगर की बसावट नदी के किनारे किनारे अधिक है। पूर्व-पश्चिम की अपेक्षा उत्तर-दक्षिण की ओर की लंबाई अधिक है। अंगरेजों के शासनकाल में नगर का प्रसार दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व की ओर विशेष रूप से हुआ। फौजी छावनी, स्टेशन, सदर बाजार आदि का बनना इस प्रसार का मूल कारण था। नगर के प्रमुख द्वार होली दरवाजा के दक्षिण-पश्चिम की ओर मथुरा के लोकप्रिय कलेक्टर 'डेंपियर' के नाम पर 'डेपियर पार्क'[1] तथा 'डेंपियर नगर' की स्थापना हुई। धीरे धीरे 'डेंपियर नगर' बढ़कर शहर का एक प्रमुख मुहल्ला बन गया।

नगर की परिक्रमा : मथुरा के चारों ओर मिट्टी की एक चौड़ी नगरदीवाल के भग्नावशेष दिखाई पड़ते हैं। इस दीवाल को 'धूलकोट' कहते हैं और इसके बाहर बाहर चलकर नगर की परिक्रमा की जाती है।[2] यह धूलकोट कब बना, यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। पुराणों से ज्ञात होता है कि मथुरा नगर में बहुत प्राचीन काल में पुरकोटा या नगरदीवाल थी। किसी समय यह दीवाल पत्थर की थी और उसमें पत्थर के कई बड़े फाटक (गोपुर) बने हुए थे। संभवतः वर्तमान धूलकोट शुंगों या शक-क्षत्रपों के समय का है। यह धूलकोट ध्रुव टीले से चलकर कंस टीला, हरि पर्वत, गायत्री टीला होता हुआ भूतेश्वर जाता है और वर्तमान वाटरवर्क्स के पीछे से उत्तर की ओर मुड़कर महाविद्या की ओर सीधा जाता है। वहां से वह गोकर्णेश्वर की ओर चला जाता है। प्राचीन नगर की सीमाएं इसी धूलकोट से आबद्ध रही होंगी।

वर्तमान नगरपरिक्रमा प्रत्येक एकादशी[3] तथा अक्षयनौमी (कार्तिक शु० 9) को लगती है। इसमें नगर के प्रायः सभी मुख्य धार्मिक स्थान आ जाते हैं। 'वराह पुराण' के 'मथुरा-माहात्म्य' में इस परिक्रमा का विस्तृत वर्णन मिलता है। यात्रा का प्रारंभ विश्रामघाट से होता है। वहां से गतश्रम मंदिर, पिप्पलेश्वर महादेव, प्रयागघाट, बेनीमाधव मंदिर, श्यामजी, दाऊजी, मनमोहनजी का मंदिर तथा गोकुलनाथ जी के दर्शन करते हुए कनखल तीर्थ पहुंचते हैं। वहां से तिंदुक क्षेत्र, सूर्य घाट, ध्रुव क्षेत्र, ध्रुव टीला, सप्तर्षि टीला, कोटि तीर्थ, रावण तीर्थ, बुद्ध तीर्थ और बलि टीला होते हुए रंगेश्वर महादेव पहुंचते हैं। फिर शिव ताल आकर आगे कंकाली देवी, बलभद्र कुंड और भूतेश्वर के दर्शन कर पोतरा कुंड आते हैं। वहां से यात्रा जन्मस्थान पर बने केशवदेवजी के मंदिर में आया करती थी। पर औरंगजेब के समय में मंदिर नष्ट हो जाने पर और वहां मस्जिद बन जाने के कारण परिक्रमा पोतरा कुंड से वर्तमान केशव मंदिर, कुब्जा कूप और गलतेश्वर महादेव होकर महाविद्या पहुंचने लगी है। महाविद्या से सरस्वती मंदिर और कुंड होते हुए चामुंडा, गणेश तीर्थ, गोकर्णेश्वर महादेव और सरस्वती संगम होकर दशाश्वमेध घाट पहुंचते हैं। वहां से चक्रतीर्थ, कृष्णगंगा, सोमतीर्थ, गौघाट, घंटाभरन, कंस किला, ब्रह्मघाट, धारापत्तन और स्वामी घाट होते हुए असिकुंडा घाट आते हैं। यहां से द्वारकाधीश के मंदिर के दर्शन कर विश्राम घाट में पहुंच जाने पर परिक्रमा समाप्त होती है।

मथुरा के मुख्य मंदिर

वर्तमान मथुरा में वैष्णव संप्रदाय के ही मंदिर अधिक हैं, जिनमें मुख्यतया श्रीकृष्ण और उनकी शक्ति राधा की मूर्तियां मिलती हैं। कुछ मंदिरों की संक्षिप्त चर्चा नीचे की जाती है :

द्वारकाधीश : यह मथुरा का सबसे प्रधान मंदिर है और शहर के मध्य असिकुंडा बाजार में स्थित है। इसे 1814-15 ई० में ग्वालियर राज्य के कोषाध्यक्ष सेठ गोकुलदास पारिख ने बनवाया। इसकी पूजा का कार्य कांकरोली के पुष्टिमार्गीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोस्वामियों के अधीन है। इसके व्यय के लिए कई गांव लगे हैं। मंदिर में बहुत शुद्ध प्रसाद तैयार होता है। अन्नकूट के दिन तथा अन्य अवसरों पर बहुत से साधु एवं विद्यार्थी प्रसाद पाते हैं। यहां बराबर उत्सव होते रहते हैं। द्वारकाधीश जी की चतुर्भुजी मूर्ति का सिंगार श्रावण-झूला, जन्माष्टमी आदि उत्सवों पर बहुत सुंदर होता है। मंदिर के अंतर्गत एक संस्कृत पाठशाला है, जिसमें आचार्य तक की शिक्षा दी जाती है।

गतश्रमनारायण : इसे विश्रांतघाट के पास 1800 ई० के लगभग प्राणनाथ जी शास्त्री ने बनवाया। यह श्रीरामानुज संप्रदाय का मंदिर है। इसके पीछे प्राचीन गतश्रम मंदिर है। वहां टीले से गोवर्धनधारी कृष्ण की एक बड़ी प्राचीन मूर्ति मिली थी, जो अब मथुरा संग्रहालय में है।

गोवर्धननाथ (स्वामी घाट के पास) : इसे बड़ौदा राज्य के कामदार बाबू सेठ ने 1830 ई० में बनवाया। गोवर्धननाथ जी का एक मंदिर कंसखार पर भी है।

बिहारी जी (स्वामी घाट) : महू (मध्य प्रदेश) के छक्की लाल कन्हैयालाल सेठ ने 1850 में बनवाया।

राधाकृष्ण मंदिर (छत्ता बाजार) : 1870-71 में देवचंद बोहरे ने 40,000 रु० के व्यय से बनवाया।

विजय गोविन्द (सतघड़ा मुहल्ला) : 1867 ई० में दतिया के विजयराम बोहरे ने 65,000 रु० से इस मंदिर का निर्माण कराया।

गोविंद देव (नकारची टीला के पास) : रामगढ़ के गुरुसहायमल और घनश्यामदास पोद्दार ने 1848 ई० में बनवाया।

बलदेव (कंसखार) : 1835 ई० में शेरगढ़ के कुशालीराम बोहरे ने बनवाया। दूसरा बलदेवजी का मंदिर होली दरवाजे के पास है।

गोपीनाथ (डोरी बाजार) : चूड़ीवाले सेठों के द्वारा 1866 ई० में बनवाया गया।

वराह जी (मानिक चौक) : इसमें वराह भगवान की प्राचीन मूर्ति है।

बेनीमाधव (प्रयाग घाट) : यह रामानुज संप्रदाय का मंदिर है।

श्रीराम मंदिर (रामजी द्वारा) : रामनवमी के दिन यहां उत्सव मनाया जाता है।

कंस निकंदन : होली गली में है।

वीर भद्रेश्वर (चौबच्चा मुहल्ले में) : इसे बनारस के राजा पटनीमल ने 19वीं शती के प्रारंभ में बनवाया था।

दीर्घ विष्णु : यह घीया मंडी में है इसे भी राजा पटनीमल ने बनवाया था।

भैरवनाथ (लोहिया गली) : इसे सरवर सुलतान का मंदिर भी कहते हैं। इसमें सभी जातियों के लोग, विशेषकर मुसलमान दर्शन करने आते हैं। यहां मुसलमान फकीर सरवर सुलतान का स्मारक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किशोरी रमण मंदिर : यह किशोरीलाल भार्गव द्वारा बनवाया गया था। इस मंदिर की एक सुंदर वाटिका भी है। मंदिर में संगीत का आयोजन अब भी अच्छा होता है।

महाविद्या : यह मंदिर नगर के बाहर एक ऊंचे टीले पर बना है। यह 17वीं शती के अंत में पेशवा के द्वारा बनवाया गया था, फिर श्री शीलचंद्र ने इसकी मरम्मत करवाई। इसके चारों ओर पहले घना जंगल था।

इन मंदिरों में से अधिकांश में श्रावण झूला के अवसर पर विशेष उत्सव मनाया जाता है। सोने-चांदी के सुसज्जित हिंडोले पड़ते रहते हैं तथा अन्य अनेक प्रकार के साज-सिंगार किए जाते हैं। रास, कीर्तन, कथा-वार्ता, संगीत आदि से ये मंदिर समय समय पर मुखरित होते रहते हैं।

मथुरा में शिवजी के भी कई मंदिर हैं, जिनमें चार प्रधान हैं : उत्तर में गोकर्णेश्वर, दक्षिण में रंगेश्वर, पश्चिम में भूतेश्वर और पूर्व में पिप्पलेश्वर। इस प्रकार नगर के चारों ओर शिव के होने से उन्हें मथुरा का कोतवाल कहा जाता है।

अन्य दार्शनिक स्थान

कृष्ण जन्मभूमि : यह स्थान मथुरा का सबसे पावन स्थान है। यहीं उस लोक-नायक ने जन्म लिया था जिसका गीतोपदेश विश्व के समस्त तत्वज्ञान में सर्वोपरि माना जाता है। इस जन्मभूमि पर समय समय पर भारतीय राजाओं और प्रजाओं ने अपार धन व्यय करके अपने पूज्य केशव की महानता के अनुरूप विशाल मंदिर खड़े किए।[4]

जन्मस्थान पर बने हुए मंदिर बार बार नष्ट किए गए। इस समय वीरसिंह देव द्वारा बनवाए गए मंदिर की चौकी शेष है। इसके सामने 55 मीटर लंबी और 28 मीटर चौड़ी पक्की कुर्सी पर औरंगजेब की बनवाई मस्जिद बनी है।

पोतरा कुंड : यह चौकोर पक्का कुंड जन्मस्थान के समीप ही है। इसका विस्तार बहुत बड़ा है। कहते हैं कि इस कुंड में पहले बालक कृष्ण के कपड़े धोए गए थे, इसी से इसका नाम 'पोतरा कुंड' पड़ा। 1850 ई० में ग्वालियर राज्य के काम-दार ने बहुत धन व्यय करके इसका पुनर्निर्माण कराया। इस कुंड में बाद में नहर से पानी लेने की भी व्यवस्था की गई। अब कुंड की दशा ठीक नहीं है। उसकी कुछ भग्न दीवालों पर अब भी सुंदर चित्रकारी देखी जा सकती है।

कंस किला : यह किला यमुनातट पर स्वामीघाट से कुछ उत्तर की ओर है। यह अकबर के समकालीन आमेर के राजा मानसिंह का बनवाया हुआ है। मानसिंह के बाद उनके प्रसिद्ध वंशज सवाई जयसिंह (1699-1743 ई०) इसमें बहुत दिन तक रहे। उन्होंने इस किले के ऊपर ज्योतिष की वेधशाला बनवाई, जो अब नष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गई है। 1857 के स्वतंत्रतायुद्ध के पहले ज्योतिप्रसाद नामक ठेकेदार ने किले की जमीन ले ली थी। जब कुछ इमारतों के निर्माण के लिए सामान की आवश्यकता पड़ी तब उसने किले के पत्थरों आदि को निकलवाकर उन्हें बाहर पहुंचा दिया। इस प्रकार उसने इस इमारत को बड़ी क्षति पहुंचाई। उसके नष्ट करने के लगभग 60 वर्ष पहले डेनियल द्वारा किले का जो चित्र लिया गया उसमें किले का अधिकांश भाग सुरक्षित अवस्था में प्रदर्शित है।

सती बुर्ज : यह 17 मीटर ऊंचा चौखंडा बुर्ज विश्रांत घाट के दक्षिण यमुनातट पर बना है। इस स्थान पर जयपुर के राजा भारमल की रानी सती हुई थीं। उनके बेटे भगवानदास ने इस घटना की स्मृति में 1570 ई० में यह बुर्ज बनवाया। इसके ऊपर हाथी आदि की साधारण चित्रकारी है। औरंगजेब ने इसके ऊपर का शिखर तुड़वा दिया। उसकी जगह 19वीं शती के प्रारंभ में एक कलाहीन गुंबद लगवाया गया।

शिवताल : यह बड़ा सरोवर भगतसिंह पार्क के बाहर वृंदावन वाली रेलवे लाइन के परली पार है। इसे 1807 ई० में बनारस के राजा पटनीमल ने बनवाया था। इसकी बनावट सुंदर है। किनारे किनारे दीवालों पर चित्रकारी भी दर्शनीय है। चारों ओर हरे-भरे वृक्षों से सरोवर की शोभा बहुत बढ़ गई है।

जमुना बाग : मथुरा के ख्यातनामा सेठों का यह बाग शहर के दक्षिण ओर यमुनातट पर स्थित है। इसमें अनेक प्रकार के लतावृक्ष हैं। बाग के भीतर द्वारकाधीश मंदिर के निर्माता सेठ पारिखजी की तथा मनीरामजी की याद में दो छतरियां बनी हैं। दूसरी छतरी, जो 1837 ई० में बनी, बहुत आकर्षक है। इसमें पत्थर का काम नायाब है और प्राचीन उन्नत स्थापत्य कला की याद दिलाता है। बगीचे में ही विश्रामभवन तथा अतिथिशाला है।

पुरातत्व संग्रहालय : यह इमारत भगतसिंह पार्क में है। इसमें ब्रज के विभिन्न स्थानों से प्राप्त लगभग 10,000 पुरानी मूर्तियां आदि संगृहीत हैं जो आद्य ऐतिहासिक काल से लेकर ई० बारहवीं शती तक की तथा कुछ उसके बाद की हैं। इनका प्रदर्शन सुंदर ढंग से कालक्रमानुसार किया गया है।

गीता मंदिर : यह मंदिर मथुरा के बाहर वृंदावन सड़क पर है। इसमें विविध चित्र एवं मूर्तरचना के साथ साथ प्राचीन वाङ्मय के चुने हुए उपदेशात्मक वाक्य जगह जगह खुदे हुए हैं, मंदिर के समीप गीतास्तंभ है, जिसपर संपूर्ण गीता खुदी हुई है। पास में गीता धर्मशाला है।

मुख्य घाट

वर्तमान समय में मथुरा में 24 घाट महत्वपूर्ण माने जाते हैं जिनमें से 12 विश्रांत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के उत्तर में और शेष 12 दक्षिण में स्थित हैं।

विश्रांत या विश्राम घाट : शहर के लगभग बीचोबीच में है।[5] घाट पर यमुनाजी का छोटा मंदिर एवं आस-पास अन्य अनेक मंदिर हैं। सायंकाल यहां की आरती का दृश्य बड़ा मनोहर होता है। मुख्य अवसरों पर यहां स्नान में सब घाटों से अधिक भीड़ होती है।

ओड़छा के स्वनामधन्य राजा वीरसिंहदेव ने विश्रांत घाट पर 81 मन स्वर्ण-तुला का दान किया। फिर जयपुर, रीवा और काशी के राजाओं ने भी स्वर्णतुला दान किए। यहां काशीनरेश ईश्वरीप्रसाद जी को तीन मन सोने से तोला गया।

उत्तर की ओर के 12 घाट ये हैं : (1) गणेश घाट, (2) दशाश्वमेध घाट, (3) सरस्वती संगम घाट, (4) चक्रतीर्थ घाट, (5) कृष्णगंगा घाट, (6) सोमतीर्थ या स्वामी घाट (इसे वसुदेव घाट भी कहते हैं), (7) घंटाभरन घाट, (8) धारा-पत्तन घाट, (9) बैकुंठ घाट, (10) नवतीर्थ या वराह क्षेत्र घाट, (11) असिकुंडा घाट, (12) मणिकर्णिका घाट।

दक्षिण की ओर के 12 घाट ये हैं : (1) विश्रांत या विश्राम घाट, (2) गुप्त-तीर्थ घाट, (3) प्राग (प्रयाग) घाट, (4) श्याम घाट, (5) राम घाट, (6) कन-खल घाट, (7) सूर्य घाट, (8) ध्रुव घाट, (9) सप्तर्षि घाट, (10) मोक्षतीर्थ घाट, (11) रावणकोटि घाट, (12) बुद्ध घाट।

प्रमुख उत्सव तथा मेले

मथुरा नगर उत्सवों के लिए प्रसिद्ध है। यहां हर महीने विविध उत्सव हुआ करते हैं। उनमें मुख्य नीचे दिये जाते हैं।

यमुना-षष्ठी (चैत सुदी छठ) : विश्रांत घाट पर यमुना-महोत्सव मनाया जाता है।

दुर्गा अष्टमी (चैत सुदी अष्टमी) : महाविद्या मंदिर पर मेला लगता है।

राम नवमी (चैत सुदी नवमी) : रामजी द्वार पर राम मंदिर के दर्शन और उत्सव।

नृसिंह लीला (वैशाख सुदी चौदस) : सतघड़ा, गोलपाड़ा मानिक चौक, कुआ वाली गली और द्वारकाधीश मंदिर में नृसिंह लीला मनाई जाती है।

वन विहार (वैशाख पूर्णिमा) : रात में नगर की परिक्रमा की जाती है।

दशहरा (जेठ सुदी दशमी) : दशाश्वमेध घाट में विशेष स्नान होता है।

जलयात्रा (जेठ पूर्णिमा) : यमुना जी से जल लाकर लोग अपने इष्ट देवों का अभि-षेक करते हैं।

रथयात्रा (आषाढ़ सुदी दुइज) : द्वारकाधीश, दाऊजी और मदनमोहन के मंदिरों में विशेष उत्सव होते हैं।

आषाढ़ी परिक्रमा (आषाढ़ सुदी एकादशी) : इस दिन लोग प्रातःकाल से परिक्रमा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रारंभ करते हैं। कुछ लोग मथुरा के अतिरिक्त वृंदावन तथा गरुड़ गोविंद की भी परिक्रमा लगाते हैं।

व्यासपूनो (आषाढ़ी पूर्णिमा) : गुरु की पूजा होती है। शाम को दंगल होते हैं।

हरियाली तीज (सावन सुदी तीज) : इस दिन मथुरा में सब जगह उत्सव मनाया जाता है। भूतेश्वर महादेव के पास मल्ल लोग कुश्ती लड़ते हैं।

पंच तीरथ : सावन सुदी पंचमी से यह मेला प्रारंभ होता है। पहले दिन मधुवन यात्रा का, दूसरे दिन शांतनु कुंड का, तीसरे दिन गोकर्णेश्वर का, चौथे दिन गरुड़ गोविंद का और पांचवें दिन ब्रह्मकुंड (वृंदावन) का मेला होता है।

रक्षा बंधन (सावन पूर्णिमा) : इस दिन राखी बंधन का उत्सव होता है तथा विभिन्न स्थानों में दंगल होते हैं।

जन्माष्टमी (भादों बदी अष्टमी) : लोग आधी रात तक व्रत रखते हैं। उसके बाद कृष्ण जन्मोत्सव मनाया जाया है। नगर के प्रायः सभी मंदिर बहुत सजाए जाते हैं। द्वारकाधीश का शृंगार सबसे अधिक सुंदर होता है।

राधा अष्टमी (भादों सुदी अष्टमी) : इस दिन राधिकाजी का जन्मोत्सव मनाया जाता है।

दानलीला (भादों सुदी एकादशी) : इस दिन मधुवन, तालवन और कुमुदवन की विशेष परिक्रमा की जाती है। इसी दिन गोसाइयों की वनयात्रा भी उठती है।

अनंत चौदस (भादों सुदी चौदस) : बलदाऊजी की विशेष पूजा होती है। पहले इस दिन यमुना में अच्छी तैराकी हुआ करती थी।

दशहरा (आश्विन सुदी अष्टमी से द्वादशी तक) : महाविद्या के पास रामलीला मैदान में मेघनादलीला, कुंभकर्ण लीला, रावण वध, भरत मिलाप तथा राजगद्दी की लीला क्रमशः एक एक दिन के बाद दिखाई जाती हैं।

अन्नकूट (कार्तिक सुदी प्रतिपदा) : द्वारकाधीश में छप्पन प्रकार के भोग तैयार किए जाते हैं। अन्य कई मंदिरों में भी उत्सव मनाया जाता है।

यमद्वितीया (कार्तिक सुदी द्वितीया) : मथुरा में इस दिन सबसे बड़ा स्नान होता है और कई लाख आदमी इकट्ठे होते हैं। स्नान के उपरांत मंदिरों के दर्शन किए जाते हैं।

धोबी मारन लीला (कार्तिक सुदी सप्तमी) : यह लीला वृंदावन दरवाजे पर होती है। कृष्ण द्वारा कंस के धोबी का वध दिखाया जाता है।

गोचारन (कार्तिक सुदी अष्टमी) : गोपाल बाग में मेला लगता है, जिसमें रंग-बिरंगी सुसज्जित गौवें लाई जाती हैं।

अक्षय नवमी (कार्तिक सुदी नवमी) : बहुत बड़े जनसमूह द्वारा नगर की परिक्रमा लगाई जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कंस वध मेला (कार्तिक सुदी दशमी) : रंगेश्वर महादेव के पास कंस टीला पर बहुसंख्यक भीड़ इकट्ठी होती है। चौबे लोग विविध वस्त्राभूषणों से सजकर तथा हाथ में लाठी-डंडे लेकर आते हैं और टीले के ऊपर कागज की बनी हुई विशाल-काय कंसमूर्ति को मार गिराते हैं। फिर सब लोग विश्रांत घाट लौटते हैं।

देवोत्थानी एकादशी (कार्तिक सुदी एकादशी) : मथुरा नगर की परिक्रमा सहस्रों स्त्री-पुरुषों द्वारा लगाई जाती है।

होली (फागुन सुदी एकादशी से पूर्णिमा तक) : मथुरा में होली का उत्सव एक सप्ताह से अधिक मनाया जाता है पर पांच दिन अधिक धूमधाम रहती है। बगीचे और मंदिर सजाए जाते हैं। नगर में अनेक प्रकार के लोकगीतों और लोक नृत्यों की बहार रहती है।

उजली चौपई (चैत बदी प्रतिपदा) : वर्तमान केशवदेव मंदिर में मेला लगता है।

फूलडोल (चैत बदी पंचमी) : बगीचियों में फूलडोल का उत्सव विशेष रूप से मनाया जाता है। इसमें संगीत की प्रधानता रहती है।

आधुनिक वैज्ञानिक विकास के प्रभाव से मथुरा जैसा प्राचीन सांस्कृतिक नगर अछूता नहीं रह सका। व्यावसायिक उन्नति ने इस नगर की श्रीवृद्धि की है। कपड़ों की छपाई का उद्योग यहां उत्तर मध्यकाल में भी था। अब इस उद्योग का अत्यधिक विकास हुआ है। छपाई के कारखानों की संख्या अब लगभग तीन सौ हो गई है। मथुरा के जालीनुमा छपे वस्त्रों की मांग न केवल देश के विभिन्न भागों में बढ़ी है, अपितु विदेशों के लिए भी उनका निर्यात बड़े परिणाम में किया जाता है।

चीनी मिलों के लिए बड़े संयंत्रों का निर्माण मथुरा की त्रिवेणी इंजीनियरिंग फर्म में होता है। इनकी मांग बराबर बढ़ती जा रही है।

मथुरा में केंद्रीय शासन द्वारा तेलशोधक कारखाना स्थापित किया गया है। इस कारखाने की स्थापना से मथुरा के आर्थिक विकास में सहायता मिली है। दिल्ली और आगरा जैसे बड़े नगरों के बीच मथुरा का स्थान इस हेतु बहुत उपयुक्त है। इस कारखाने की स्थापना से पर्यावरण-प्रदूषण का जो भय आरंभ में उत्पन्न हुआ था, उसका निराकरण हो चुका है।

कांसे-तांबे के बर्तन बनाने, निवाड़ तथा स्थापत्य कला के पुराने उद्योग आज भी मथुरा में प्रगतिशील हैं। हाल में छोटे कारीगरों, भूमिहीन किसानों तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों की सुविधा के लिए अनेक लघु उद्योगों की स्थापना मथुरा और उसके आसपास की गई है। इधर पुस्तक छपाई के कार्य में भी यहां विशेष प्रगति हुई है और आज कई बड़े मुद्रणालयों की स्थापना हो चुकी है, जिनमें छपाई के नवीनतम उपकरणों की व्यवस्था है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुख्य रेल तथा सड़क मार्गों पर होने के कारण मथुरा को आर्थिक विकास हेतु आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध हैं।

संदर्भ

1. अब इसका नाम 'भगतसिंह पार्क' है.
2. यह परिक्रमा 'पंचकोसी' कहलाती है. ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा इससे भिन्न है. उसमें ब्रज के सभी मुख्य तीर्थों की यात्रा हो जाती है. जो लगभग 84 कोस लंबी होती है. वह प्रायः भादों के महीने में प्रारंभ होकर डेढ़ महीने में समाप्त होती है.
3. देवशयनी एकादशी (कार्तिक शु० 11 के दिन) कुछ लोग मथुरा के साथ वृंदावन की भी परिक्रमा करते हैं. इस बड़ी परिक्रमा में गरुड़ गोविंद के भी दर्शन किए जाते हैं. वैशाख शु० पूर्णिमा को रात को मथुरा नगर की परिक्रमा की जाती है. इसे 'वन विहार की परिक्रमा' कहते हैं. इसमें साथ साथ गाना-बजाना भी चलता है.
4. वैष्णव धर्म के अभ्युत्थानकाल में मथुरा में केशव के नाम से श्रीकृष्ण का पूजन प्रधान हो गया. जिस मुहल्ले में जन्मस्थान है वह अब भी 'कटरा केशवदेव' या 'केशवपुरा' कहलाता है. केशव के प्रधानदेवत्व का परिचायक निम्नलिखित दोहा मथुरा में बहुत समय से प्रचलित है : 'मथुरा में मंगता बसैं, दाता केशवदेव।
   बाभन, बनियाँ, बाँदरा लूटि खान की टेव ॥'
   हाल में श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंस्थान द्वारा जन्मभूमि का पुनरुद्धार कार्य व्यवस्थित रूप में संपन्न किया गया है. अब यहां एक भव्य प्रासाद के साथ भागवतभवन, अंतर्राष्ट्रीय विश्रामगृह, पुस्तकालय, संग्रहालय आदि की स्थापना कर दी गई है.
5. श्रीकृष्णकालीन प्राचीन विश्रांत कहां था, यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते. हो सकता है कि वह कटरा केशवदेव के समीप कहीं रहा हो. उस समय यमुना का बहाव जन्मस्थान के निकट ही रहा होगा. कुछ लोग प्राचीन विश्रांत को असिकुंडा और स्वामीघाट के बीच उस स्थान में मानते हैं जहां आजकल मखदूम साहब की दरगाह है. ये मखदूम शाह विलायत 'हैरात' के रहने वाले थे और निजामुद्दीन औलिया के शागिर्दों में बताए जाते हैं. इनकी मृत्यु मथुरा में हुई. 14वीं शती के प्रारंभ में संभवतः अलाउद्दीन के भाई उलगखां ने, जिसके नाम का एक लेख यहीं मिला है, वर्तमान 'मखदूम साहब' पर स्थित हिंदू मंदिर को तुड़वा कर वहीं फकीर की स्मृति में एक इमारत बनवाई. उसके बाद 1875 ई० में वहां वर्तमान नई मस्जिद का निर्माण हुआ.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अमलानन्द घोष : 'जैन आर्ट ऐंड आर्किटेक्चर', जिल्द 1-3, दिल्ली, 1975.
2. अवध विहारीलाल अवस्थी : 'प्राचीन भारतीय भूगोल', लखनऊ, 1972.
3. आनंद के. कुमारस्वामी : यक्षाज (भाग 1-2), वाशिंगटन, 1928 तथा 1931.
4. एच. ल्यूडर्स : लिस्ट आफ ब्राह्मी इंस्क्रिप्शंस, काशी, पुनर्मुद्रित, 1973.
5. एफ. एस. ग्राउज : 'मथुरा, ए डिस्ट्रिक मेम्वायर', तृतीय संस्करण, इलाहाबाद 1883.
6. कृष्ण दत्त वाजपेयी : 'मथुरा परिचय' मथुरा, 1950.
7. जान ऐलन : 'कैटलाग आफ क्वायंस इन द ब्रिटिश म्यूजियम – ऐंश्यंट इंडियन', लंदन 1939.
8. जे. पी. एच. फोगल : 'कैटलाग आफ आर्केओलाजिकाल म्यूजियम ऐट मथुरा', इलाहाबाद, 1910.
9. दिनेशचन्द्र सरकार : 'सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस', जिल्द 1, कलकत्ता, 1965.
10. नी. पु. जोशी : 'मथुरा की मूर्तिकला', मथुरा, 1965.
    — 'ब्रह्मनिकल स्कल्प्चर्स', लखनऊ, 1972.
11. परमेश्वरीलाल गुप्त : 'गंगावैली टेराकोटा आर्ट', वाराणसी, 1972.
12. प्रभुदयाल मीतल : 'ब्रज का इतिहास', दिल्ली, 1966.
    —'ब्रज संस्कृति का इतिहास', दिल्ली 1966.
13. बलदेव उपाध्याय : 'भागवत संप्रदाय', वाराणसी, 1953.
14. रमानाथ मिश्र : 'ऐंश्यंट आर्टिस्ट्स ऐंड आर्ट ऐक्टिविटीज', शिमला, 1975.
15. रमेशचन्द्र शर्मा : 'मथुरा संग्रहालय परिचय', मथुरा', 1972.
16. वासुदेव शरण अग्रवाल : 'हैंडबुक आफ दि स्कलप्चर्स इन द कर्जन म्यूजियम', मथुरा
    —'मथुरा म्यूजियम कैटलाग', इलाहाबाद, 1939.
    —'इंडियन आर्ट', वाराणसी, 1965.
17. विसेंट स्मिथ : 'दि जैन स्तूप ऐंड अदर ऐंटिक्विटीज आफ मथुरा', इलाहाबाद 1901.
18. विजयेन्द्र स्नातक : 'राधावल्लभ संप्रदाय', दिल्ली, 1957.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

19. विनोदचन्द्र सिंहा : 'हिस्टरी आफ दि शुंग डाइनेस्टी', दिल्ली, 1977.
20. वियोगी हरि : 'व्रज माधुरी सार'.
21. सतीश चन्द्र काला : 'भारतीय मृत्तिका', इलाहाबाद, 1972.
22. हर्बर्ट हर्टल : 'सम रिजल्ट्स आफ दि ऐक्सकैवेशंस ऐट सोंख', नई दिल्ली, 1976.
23. हेमचन्द्र राय चौधरी : 'अर्ली हिस्टरी आफ दि वैष्णव सेक्ट', कलकत्ता 1936.
24. 'पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ' : मथुरा, 1953.
25. 'मार्ग' मथुरा कला विशेषांक : जिल्द 15, बम्बई, 1959.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र सूची

1. मौर्यकालीन मृण्मूर्तियां : केश-विन्यास तथा विभिन्न आभूषण।
2. शुंगकालीन मृण्मूर्तियां, जिनमें विभिन्न भागों में नारियां अंकित हैं।
3. दाएं हाथ से अशोक वृक्ष की डाल पकड़े हुए तथा बायां हाथ मेखला पर रखे शालभंजिका।
4. हाथों में प्रसाधन सामग्री लिए हुए प्रसाधिका की प्रतिमा। ई० दूसरी शती।
5. व्रज का विशेष लहंगा पहने हुए, सिर पर दही की मटकी लिए गोपी।
6. ईरानी वेशभूषा में विदेशी युवती जो दोनों हाथों से दीपशिखा थामे हुए है।
7. शुंगकालीन स्त्री की मृण्मूर्ति—पुष्पग्रथित अलंकृत केशसज्जा तथा विविध आभरणों का आलेखन।
8. अभय मुद्रा में प्रारंभिक कुषाणयुगीन लक्ष्मी की पाषाण प्रतिमा जिनके बाएं हाथ में सनाल कमल है।
9. अभय मुद्रा में खड़े हुए भगवान बुद्ध की सर्वांगपूर्ण मूर्ति जिसका निर्माण गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम के समय यशदिल नामक कलाकार द्वारा किया गया।
10. पद्मासन पर बैठे हुए जैन तीर्थंकर ऋषभनाथ की पाषाण प्रतिमा। (गुप्त काल)
11. मथुरा कला में प्राप्त ऊंची टोपी पहने हुए शक युवक का सिर। ई० दूसरी शती।
12. बोधिवृक्ष के नीचे अभय मुद्रा में बैठे हुए भगवान बुद्ध, चौकी पर प्रथम शती का ब्राह्मी लेख। (कटरा से प्राप्त)।
13. कुषाण सम्राट कनिष्क की अभिलिखित मूर्ति। मध्य एशिया की वेशभूषा, राजदंड तथा तलवार।
14. राधा और कृष्ण (रासलीला की भावपूर्ण मुद्रा में)।
15. शिलापट्ट जिस पर ब्रह्मा अपनी शक्ति सावित्री के साथ प्रसन्न मुद्रा में आसीन दिखाए गए हैं। ई० दसवीं शती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

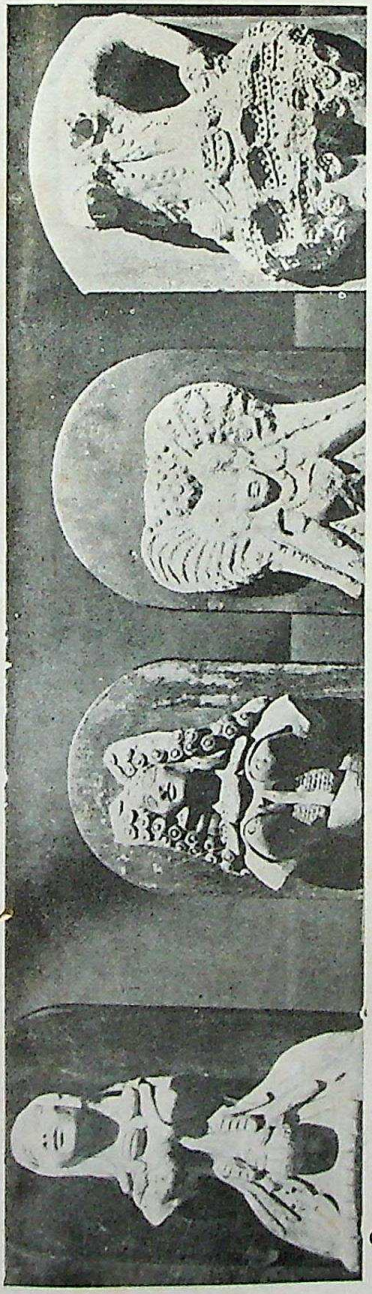

2

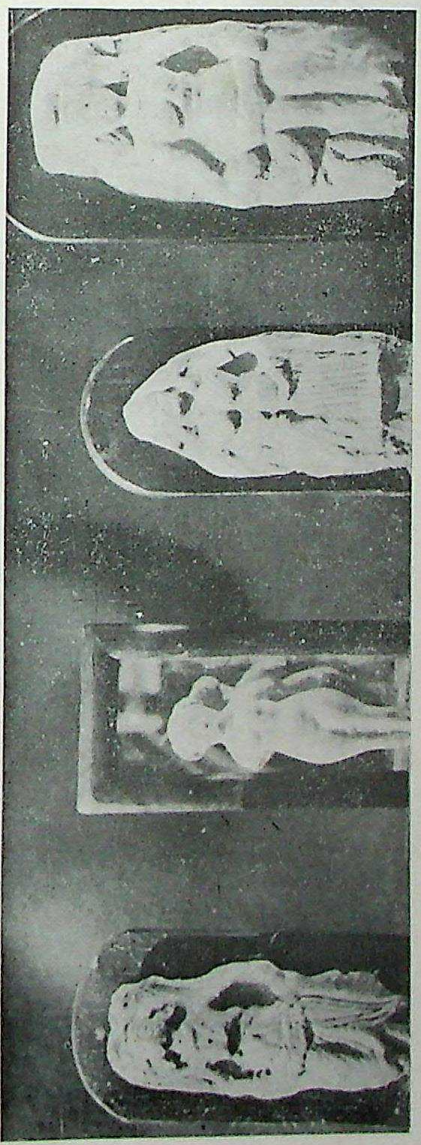

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3

4

5

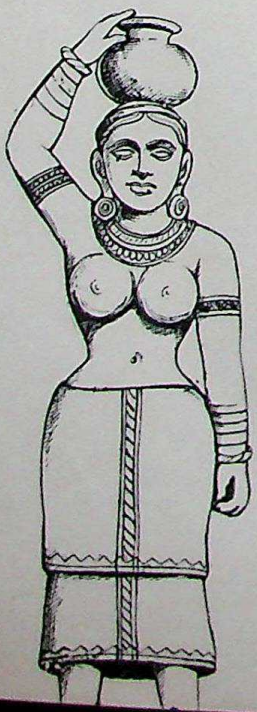

6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7

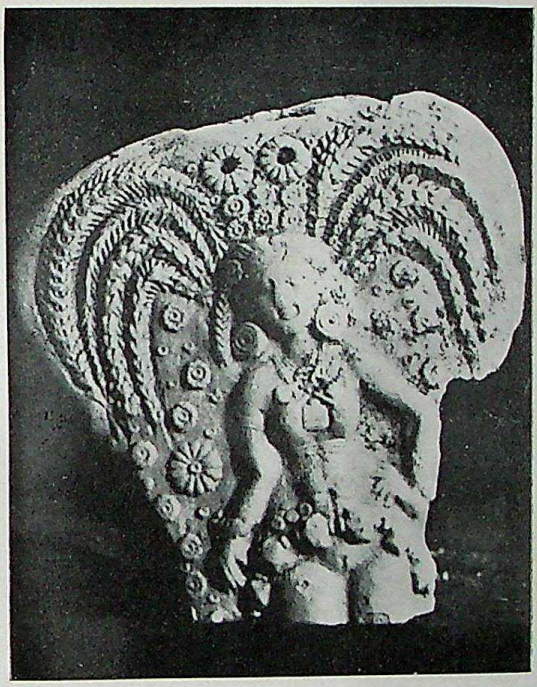

8

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9

10

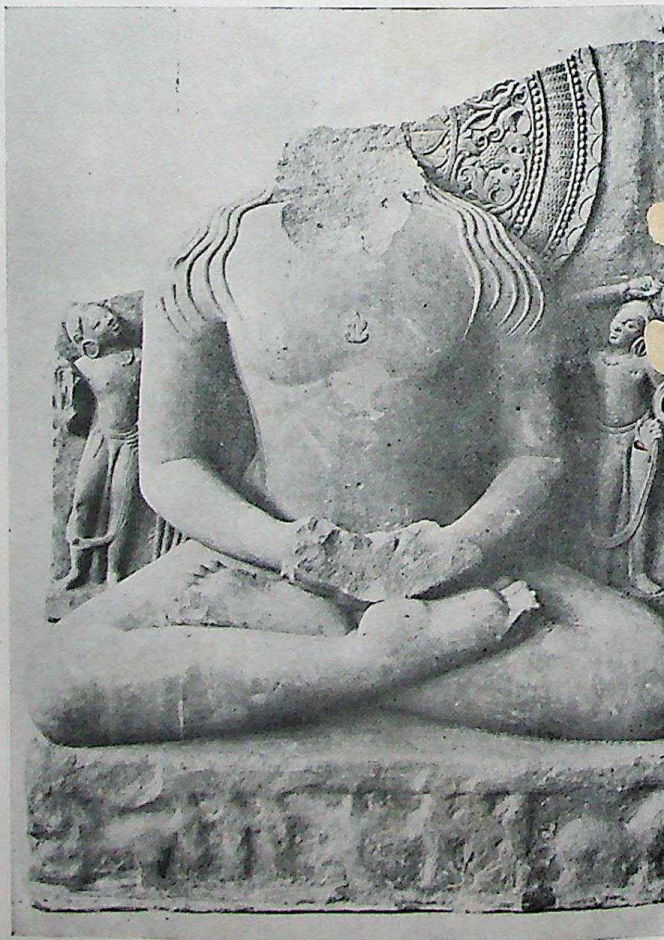

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

12

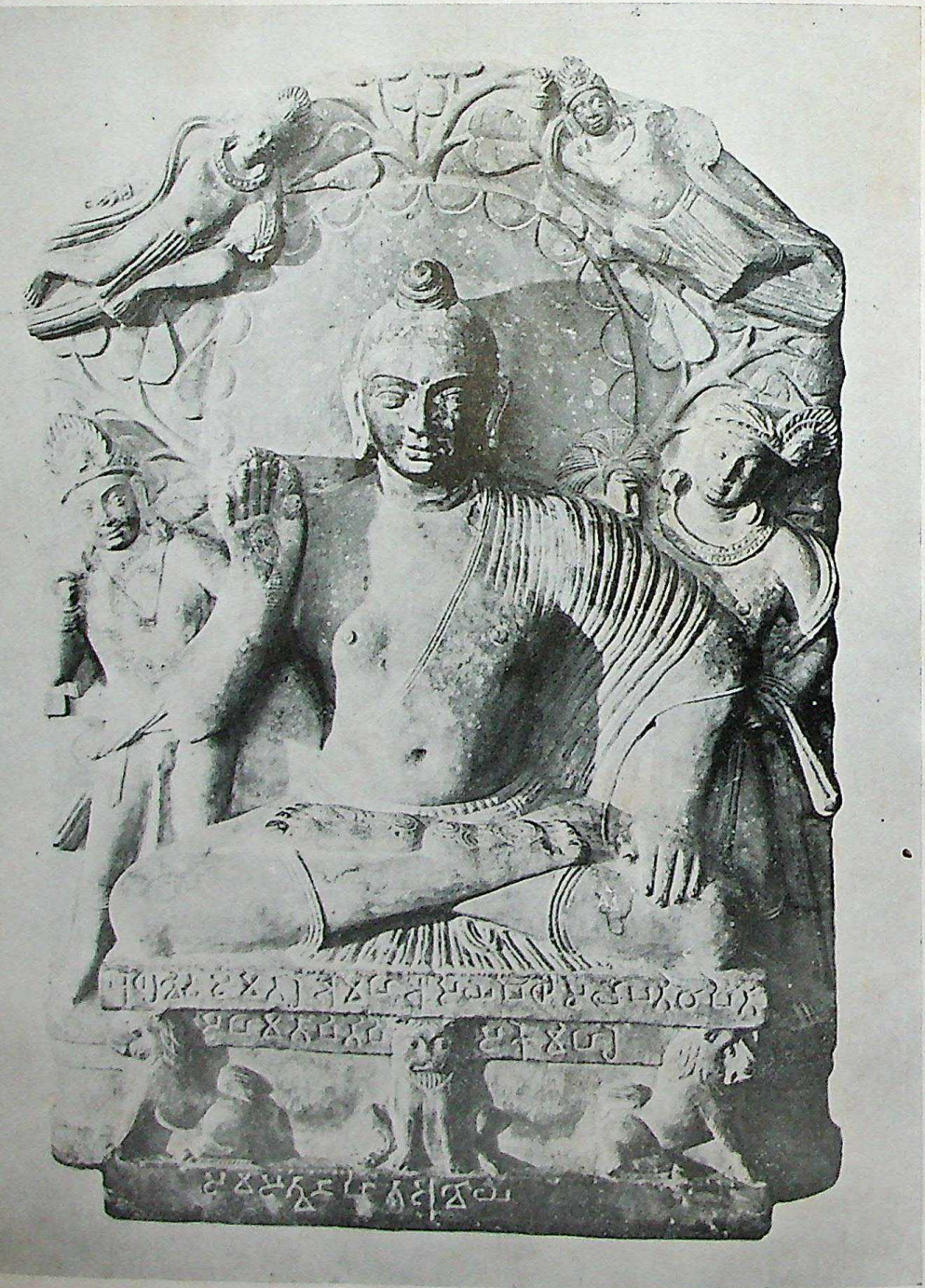

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

13

14

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

15

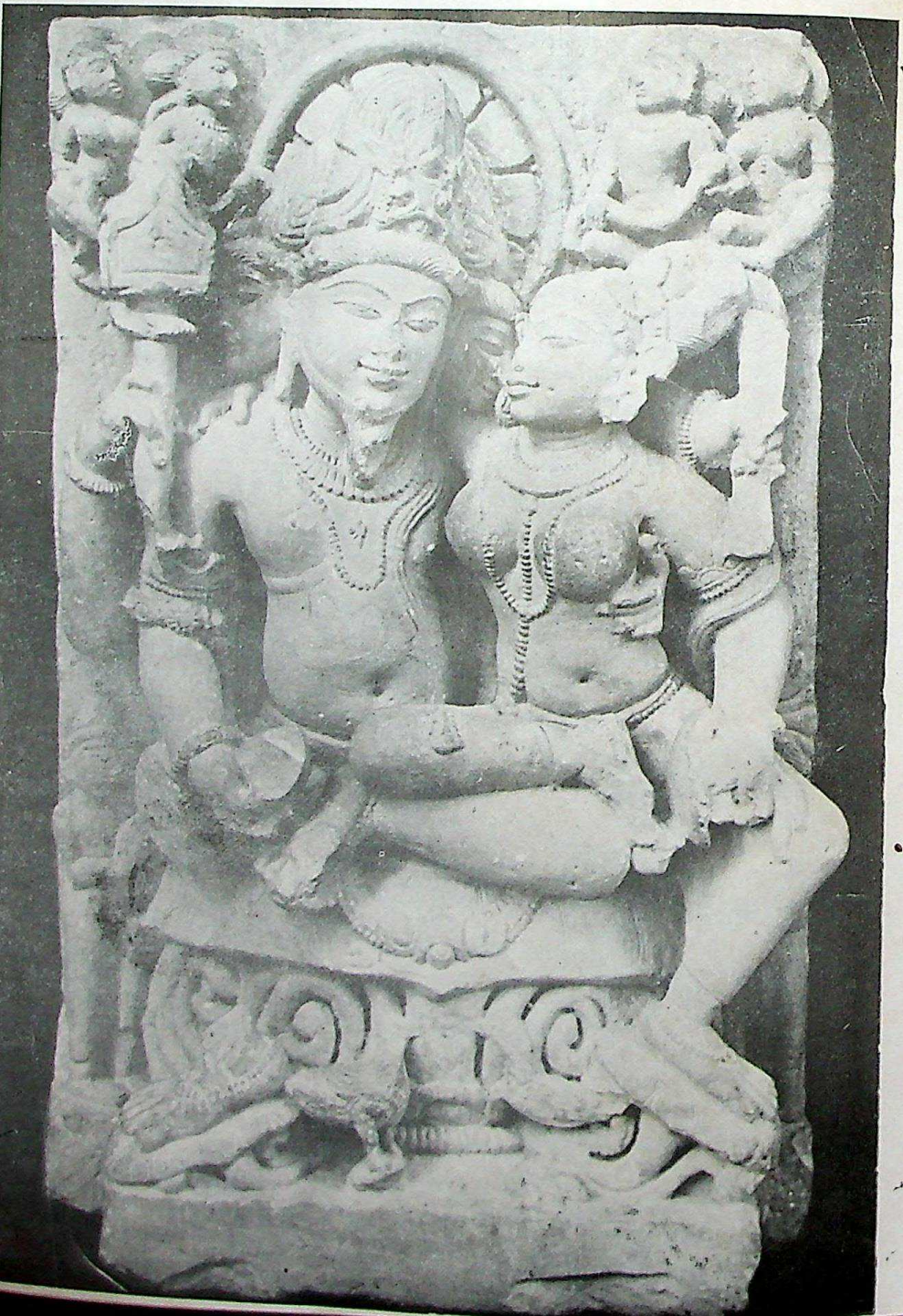

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रमणी

अंग, 18
अंधक, 18
अंबरीष, 9
अकबर, 36, 37, 40, 43, 56, 61
अग्रवाल, साधुराम, 68
अनिरुद्ध, 21
अब्दुन्नवी, 37
अब्दाली अहमदशाह, 38
'अभिधान चिंतामणि', 2
अमावसु, 9
अयोध्या (साकेत) 3, 9, 10, 11, 24
अरिष्टनेमी, 80
अर्जुन, 20, 21
अल-उत्वी, 34, 43, 104, 105
अलबदाऊनी, 106
अलबरूनी, 34, 35, 105
अवंति, 10, 20, 22
अवंतिपुत्र, 22, 23, 73
अशोक, 23, 40, 74, 75
'अशोकावदान', 73
अश्वघोष, 28, 73, 77
असम, 20
'अहिच्छत्रा', 24
आदिनाथ, 80
आयु, 9, 10
'इंडिका', 101, 102
'इंडिया बेरा', 106
इंद्रप्रस्थ, 21
इंद्र, भगवानलाल, 5
इंद्रभूति, 79
इला, 9
इक्ष्वाकु, 9
ईश्वरी प्रसाद (काशी नरेश), 11:
उग्रसेन, 15, 17, 18
उज्जयिनी, 24, 27
उदयन, 22
उदिताचार्य, 86
उदितेश्वर, 31
उर्वशी, 9
उशना, 12
'ऊषाचरित', 68
एरियन, 23, 101
ऐलन, 24
ओढदास, 68
औरंगजेब, 37, 38, 43, 44, 108, 111, 114
कंकाली टीला, 27, 40, 45, 79, 81, 83
कंबोजिका, 5, 27, 54, 76
कंस, 15, 17, 18, 67
कंस किला, 47, 111, 113
कंसखार, 111
कनिंघम, अलैक्जेंडर, 5, 24, 101, 102
कनिष्क, 28, 29, 40, 54, 77
कन्नौज (कान्यकुब्ज), 2, 9, 12, 34; 35

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्जन, लार्ड, 6
कर्ण, 20
करुष, 19
कला/शैली
—गांधार, 5, 54
—चित्र, 56, 58
—'ज्योतिष', 69
—मथुरा, 5, 6, 47, 54
—मल्ल. 69, 70
—मूर्ति, 40, 45, 48, 53
—वास्तु, 40
कल्लन, 68
'कविहृदयविनोद', 67
कांतिपुरी, 30
काठियावाड़, 26
कामवन, 89
कार्तवीर्य अर्जुन, 10
कालयवन, 19
काशी, 18, 19
किशनगढ़, 57, 58, 92
कुंभनदास, 64
कुतुबुद्दीन, 35
'कुब्जाअष्टक', 67
'कुब्जा पचीसी', 68
कुम्भ, 1, 3
कुम्भक्षेत्र, 11
केशवदास (महाकवि), 57, 58
कोसल, 18, 19
कौशांबी, 22, 24, 30
कौशिक, 12
कृष्ण कवि, 66
कृष्णदास, 61, 64
कृतवीर्य, 10
कृथभीम, 12
क्राथ अंशुमान, 18
खूबचंद, 68
खेमचंद, 68
गजनवी, महमूद, 32, 34, 43, 104, 105, 106
'गजेंद्रमोक्ष', 68
ग्राउस, एफ० एस०, 5, 6
'गार्गी संहिता' 24
'गीतगोविंद', 56, 88
गुप्त
—कुमार, 5, 8
—(प्रथम) चंद्र, 30
—(द्वितीय) विक्रमादित्य, चंद्र, 31, 32, 42, 78, 86
—महाराज, 30, 31
—समुद्र, 30, 31
—स्कंद, 32
गोकर्ण, 29
गोकुल, 36, 38, 57, 61, 84, 89, 91, 108
गोनर्द (कश्मीर नरेश), 18
'गोपी पच्चीसी', 67
'गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह', 68
गोवर्धन, 2, 3, 4, 36, 37, 47, 57, 58, 61, 64, 89, 91
गोविंदनगर, 6, 7
गोविंद स्वामी, 61, 64
ग्वाल, 67
घटोत्कच, 30
घनआनंद, 38
घमंडदेव, 61
चंड प्रद्योत, 22, 73

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चंडीदास, 88
चतुर्वेदी, नवनीत, 68
चतुर्भुजदास, 64
चरक, 28
चाणक्य 23
चूड़ामल, 38
चेदि, 19
चैतन्य, 36, 88
चौबे, औघड़, 62
चौबे, गणेश (छैया), 62
चौबे, गणेशीलाल, 62
चौबे, चंदन, 62
चौबे, मानिकलाल, 68
चौबे, लल्लन, 62
चौबे, हीरालाल, 68
छीतस्वामी, 64, 65
जगन्नाथ अहिवासी, 58
जतीपुरा, 89
जमालपुर, 5, 8
जयदेव, 88
जरासंध, 18, 19
जहांगीर, 37, 43, 48
जान एलाइट, 106
जीव गोस्वामी, 91
जेजाक भुक्ति, 2
जैकेमांट, विक्टर, 109
टालमी, 23, 101
टीफेथैलर, जासेफ, 108
टेवरनियर, 37, 107, 108
डिमोट्रियस, 24
डेंपियर पार्क/नगर, 6, 110
दत्त
—उत्तम, 28
— काम, 28
— पुरुष, 28
— राम, 28
—शेष, 28
'तहफीके हिंद', 105
तक्षशिला, 24, 26, 41, 45, 84
तानसेन, 61
तारानाथ, 76
'तारीखे यामिनी', 34, 104
तुकोजीराव होल्कर, 69
तुलसीदास (गोस्वामी), 88
दंतवक्र, 18
दशरथ, 13
दाराशिकोह, 37
'दाशराक्ष युद्ध' 11
'दिव्यावदान' 73, 75
दीर्घबाहु, 13
दुर्योधन (कुम्भराज), 18, 20
देवकी, 15
देवपाणि, 9
द्रोण, 20
धन्ना, 89
'धूलकोट', 110, 111
धौलपुर, 2
ध्रुवदास, 37
धृष्टद्युम्न, 20
नंदराजा महापद्मनंद, 21, 23
नंददास, 37, 61, 64
नवनीत, 57, 68
नहुष, 9
नागभट द्वितीय, 34
नादिरशाह, 38
नानक, 36

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाभाग, 9
निंबार्क, 91, 92
नित्यानंद, 91
पंचाल, 1, 19, 24
पंडित राधाकृष्ण, 6
पंतजलि, 24
परमानंद, 56, 64, 65
पाटिलिपुत्र, 24, 75, 76, 101
पार्जिटर, 1
पार्श्वनाथ, 79, 80
'पुरातत्व संग्रहालय' राज्य संग्रहालय, मथुरा, 6
पुरुरवा, 9, 10
पुष्यमित्र, 24
पौंड्र (कलिंगपति), 18
पौरव, 10
प्लिनी, 23, 101
प्रतिष्ठान, 9, 10
प्रभास, 20
'पृथ्वीराज रासो' 35
फरिश्ता, मोहम्मद कासिम, 106
फाह्यान, 3., 41, 78, 102, 103
फोगल (डा०) 6
बदनसिंह, 38
बरसाना, 57
बरनियर, 37, 108
बलराम, 19, 47
'बालगोपाल स्तुति', 56
बिहारी, 57, 66
बुद्ध, 21, 22, 50, 51, 70, 71, 73, 74, 75
'बुद्धचरित' 28
बृहद्रथ, 23
'बृहतसंहिता', 105
ब्रह्मर्षि देश, 1
'ब्रह्मवैवर्त पुण्य', 88
'ब्रह्मसूत्र' 92
भंडारी, भोलाराम, 68
भगदत्त, 18
भगवानदास, 43, 114
भट्ट, नारायण, 61
भरतपुर, 2, 56
भागवत, 2, 62, 84, 91
भारमल, 43, 114
भीष्म, 19
भीष्मकपुत्र रुक्मी, 18
मंदिर
—कंस निकंदन, 112
—केशवराय (केशवदेव), 107, 111
—किशोरी रमण, 112
—गीता, 114
—गोकर्णेश्वर, 111, 113, 115
—गोपीनाथ, 44, 112
—गोवर्धननाथ, 112
—गोविंददेव, 43, 91, 112
—दाऊजी, 111, 115
—द्वारिकाधीश, 58, 109, 111, 115, 116
—दीर्घ विष्णु, 112
—बदेलव, 112
—बिहारीजी, 112
—बेनीमाधव, 112
—भैरवनाथ, 112
—मनमोहन, 44, 111, 115
—रंगेश्वर, 113, 117
—राधाकृष्ण, 111

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

—वराहजी, 112
—विजयगोविंद, 112
—वीर भद्रेश्वर, 112
—सतीबुर्ज, 43, 44, 114
—श्री रंगजी, 96
—हरदेव, 44
मगध, 19
'मज्झिम निकाय', 73
मतिराम, 8
मत्स्य पुराण, 1,3,19
मथुरा/'मधुरा'/मधुपुरी/महुरा/'मधूषिका'/मधूपघ्ना/'मथुला' 1, 2,3,5, 10, 14, 17, 18, 24, 54, 55, 57, 74, 91, 92, 106
मथुरा संग्रहालय, 53, 54, 55, 60, 112
मथुरा समाचार, 96
'मथुरा महात्म्य', 11
मधु, 2,12,13
मधुवन-महोली, 2,3,14,106
मधुपुर, 13
मनु, 9
'मनुस्मृति', 1
मनूची, 37
महाभारत, 2, 10, 15, 17, 70, 71
'महावंश', 75
'महाभाष्य', 24
महीपाल, 34
मांधाता, 11
माथुर हरलाल, 68
मानपुर, 57
'माथुरी वाचना', 82
मानसिंह, 43, 44, 91, 113
माहिष्मती, 10, 20
मिहिरभोज, 34
मीरा, 36
'मुतंखबुत्तवारीख', 106
'मूर्ख शतक', 68
मेगस्थनीज, 23, 84, 101
मौर्य, चंद्रगुप्त, 23, 101
यदु, 9, 10, 11
'यमुनालहरी', 67
यमुनाचार्य, 88
यमुनाष्टक, 94
ययाति, 9
ययुधान, 19
यशदिन्न, 5,8
यशोवर्मा, 34
युधिष्ठर, 20
'यादवप्रकाश', 2
रंगनाथ, 88
रघु, 13
रघुनाथ भट्ट, 91
रघुनाथ दास, 91
रसखान, 37
'रसरंग', 67
'रसराज', 58
'रसिकानंद', 67
'रसिकप्रिया', 57, 58
राघवानंद, 88
राजाराम, 38
'राधासुधानिधि', 44
राधिका, 57
रामभद्र, 34
रामानंद, 36, 88

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रामानुज, 88,96
'रामायण', 2,14
रावण, 13,14
'रुकमणि हरण', 68
लषण, 12,13,14
लोला, 12
लोदी, सिकंदर, 36,106
वंश/वंशी
—अंधक, 15,17
—इक्ष्वाकु, 11
—कुषाण, 28,29,54,77
—खिलजी, 36
—गाहडवाल, 35
—गुप्त, 30
—गुलाम, 36
—चंद्र, 9,12,13
—चेदि, 12
—जट्ट, 34
—तुगलक, 36
—दत्त, 27,28
—नंद, 23
—पुञ्ज, 10
—पौरव, 18
—भरत, 10
—मित्र, 24
—मौर्य, 23,24
—यदु, 11,14
—यादव, 10,14,18,20
—लोदी, 36
—वर्धन, 33
—वृष्णि, 15
—शुंग, 23,24,26,84
—शेशनाग, 23
—सात्वत, 84
—सैंय्यद, 36
—हैह्य, 10
—क्षत्रप, 27,54
वंशीधर, 62
व्रज/व्रजनाभ, 21
वत्स, 10
वप्पभट्टसूरि, 83
'वराह पुराण', 3,11
वल्लभाचार्य 36,89
वसुदेव, 15
वसुमित्र, 28,77
'वायुपुराण', 105
'बाल्मीकि रामायण', 2,12
वासिष्क, 28, 88
वासवदत्ता, 22,75
वासदेव, 20,47,84
विजयपाल देव, 35,36,43
विदर्भ, 10,12,20
विदिशा, 24,26
विरजानंद, 70,96
विष्णु दिगंबर, 62
विष्णु स्वामी, 88,89
वीरसिंह देव, 37, 107, 113 115
'वेदांत पारिजात सौरभ', 92
'वैजयंती कोष', 2
व्यास, 37,62
वृंदावन, 36,37,57,61,62,90,91 96,101,108
'वृहत्कथा कोश', 83
शंकराचार्य, 88
शत्रुघ्न, 1,2,3,13,14
शर्मिष्ठा, 9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शल्य, 20
शाल्वराज, 18
शाहजहां, 37,56
शिवघोष, 26
शिवदत्त, 26
शिशुपाल, 18,19
शूरसेन, 1, 3, 9, 12, 14
शोडास, 26, 42, 76, 84
'श्यामाचरण', 68
'श्यामांगावय भूषण', 68
श्रीकृष्ण, 2,17,19,20,34,45,56, 57,58,71,84,94,101,107
श्रीभट्ट, 37
श्रीराम, 1, 3, 15
'ज्ञानप्रस्थानसूत्र', 78
सगर, 10
'सतसई'/'बिहारी सतसई', 57,58,66
'सप्तऋषि टीला', 77
सरस्वती, स्वामी दयानंद, 70, 96
'सर्वज्ञ सूक्त', 89
सवाई, जयसिंह, 69, 113
सहदेव, 19
सांची, 41
सारनाथ, 41,77
सिंधिया महादजी, 38 70
सिंह कल्ला, 68
सिंह, बब्बे, 68
सिंह, बिरजू, 68
सिंह, सुजान (भरतपुर के राजा), 66
सुंदरदास, 57
'सुंदर श्रृंगार', 57
'सुजान चरित्र', 66
सूदन, 66
'सौदरनंद', 8
स्कंदिल, 30, 88
स्ट्रेची (कर्नल), 5
स्मिथ, 24
हंसनारायण (आचार्य), 92
हगान, 26
हर्टल हर्बर्ट, 6
हरसुख, 68
हरिराम, 37, 62
हस्तिनापुर, 11, 20
हरिदास, 36,37,61,62,88,93
हरिवंश, 2,3,4,13,15
हर्षवर्धन, 33,86
हर्यश्व, 13,45,15
'हित हरिवंश', 37,88
हुएन-सांग, 2,23,33,41,43,76,88 79,86,102,103,104
हुविष्क, 28,29,32,77
'हुविष्क विहार, 29,77
हेवर विशप, 106
हेमचंद्राचार्य, 2

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

नीहाररंजन राय
मौर्य तथा मौर्योत्तर कला
नीहाररंजन राय
भारतीय कला का अध्ययन
रमानाथ मिश्र
भारतीय मूर्तिकला
द्विजेंद्र नारायण झा तथा अन्य
प्राचीन भारत
रामशरण शर्मा
प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और संस्थाएं
रामशरण शर्मा
शूद्रों का प्राचीन इतिहास
ओमप्रकाश
प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास
सुवीरा जायसवाल
वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास
दामोदर धर्मानंद कोसंबी
मिथक और यथार्थ
रोमिला थापर
अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन

M

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
नई दिल्ली बंबई कलकत्ता मद्रास